इतिहास दिवाकर

त्रैमासिक अनुसंधान पत्रिका

वर्ष ८ अंक ४ पौष मास कलियुगाब्द ५११७ जनवरी २०१६

मार्गदर्शक :
डॉ० शिवाजी सिंह
चेतराम
इरविन खन्ना

सम्पादक :
डॉ० विद्या चन्द ठाकुर

सह सम्पादक
चेतराम गर्ग

सम्पादक मण्डल :
डॉ० रमेश शर्मा
डॉ० ओम प्रकाश शर्मा

टंकण एवं सज्जा :
अश्वनी कालिया

सम्पादकीय कार्यालय :
ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान,
नेरी, गांव—नेरी, डाकघर—खगल
जिला—हमीरपुर—१७७००१ (हि०प्र०)
दूरभाष : ०१९७२—२०३०४४

मूल्यः
प्रति अंक —१५.०० रुपये
वार्षिक — ६०.०० रुपय
itihasdivakar@yahoo.com
chetramneri@gmail.com

अनुक्रमणिका

सम्पादकीय

शतान्दी स्मरण
ठाकुर रामसिंह जी
भारत-विभाजन के परिप्रेक्ष्य में — कृष्णानन्द सागर — ३

संवीक्षण
भारतीय संस्कृति-सभ्यता की
आत्मा : सरस्वती नदी — रामशरण युयुत्सु — १६

कृषि दर्शन
वैदिक अर्थ व्यवस्था में कृषि — पद्मश्री डॉ. कपिलदेव द्विवेदी — २६

पर्व-त्यौहार
मण्डी के पर्वतीय ग्रामांचल
में शिवरात्रि महोत्सव — डॉ. दायक राम ठाकुर — ४१

ग्वाज़ङ ग्राम लाहुल में
मण्डी शिवरात्रि — वागंछुक शास्त्री — ४६

सम्पादकीय

ठाकुर रामसिंह जी का शताब्दी स्मरण

वीरव्रती यशस्वी इतिहास पुरुष स्वर्गीय रामसिंह जी का जन्म कलियुगाब्द ५०१६ एवं विक्रमी संवत् १९७१ के फाल्गुन सौर मास की ४ प्रविष्टे तदनुसार १६ फरवरी, १९१५ को हुआ था। कलियुगाब्द ५११६, विक्रमी संवत् २०७२ के फाल्गुन मास प्रविष्टे ४ को ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान, नेरी के परिसर में श्रद्धेय ठाकुर जी की जन्म शताब्दी कार्यक्रम का शुभारम्भ हुआ। तत्पश्चात् वर्ष भर भिन्न-भिन्न स्थानों पर ये कार्यक्रम आयोजित हुए और आगामी वर्ष भी जन्म शताब्दी के कार्यक्रम प्रचलित रहेंगे।

जन्मशताब्दी के उपलक्ष्य में इतिहास दिवाकर के प्रत्येक अंक में ठाकुर जी की प्रेरक स्मृतियों पर आधारित लेख प्रकाशित किए जा रहे हैं। इस अंक में शताब्दी स्मरण के अन्तर्गत ठाकुर जी का सान्निध्य प्राप्त विद्वान लेखक श्री कृष्णानन्द सागर जी का लेख ***ठाकुर रामसिंह जी भारत विभाजन के परिपेक्ष्य में*** *सम्मिलित है।*

भारत विभाजन के समय ठाकुर जी पंजाब प्रान्त के अमृतसर विभाग में राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के विभाग प्रचारक थे। तब मुस्लिम लीग अमृतसर को पाकिस्तान में लेने के लिए योजनाबद्ध थी, लेकिन संघ के स्वयं सेवकों ने उनकी सारी योजनाओं पर पानी फेर दिया। यह सफलता समय और परिस्थिति के अनुसार ठाकुर जी द्वारा स्वयं सेवकों को सूझ-बूझ पूर्ण उचित मार्गदर्शन प्रदान करने का परिणाम था।

ठाकुर रामसिंह जी का स्वयं सेवकों को संदेश रहता था कि ***समय और स्थिति को पहचानों तथा तदनुसार स्वयं प्रेरणा से कार्य करो।***

ठाकुर जी का यह संदेश सदैव प्रसांगिक है।

विनीत,

डॉ. विद्या चन्द ठाकुर

शताब्दी स्मरण

ठाकुर रामसिंह जी भारत-विभाजन के परिप्रेक्ष्य में

कृष्णानन्द सागर

१९४१ की बात है। लाहौर में पंजाब विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में एक एम.ए. (इतिहास) का छात्र अखबार पढ़ रहा था। अखबार में गांधी जी का एक वक्तव्य था। ''मुसलमान स्वभाव से ही आक्रामक है और हिन्दू कायर। यह पढ़ उस छात्र को गुस्सा आ गया और वह गुस्से में ही बड़बड़ाया, ''गांधी का दिमाग खराब हो गया है, हिन्दू को कायर कहता है।'' पास में ही एक दूसरा छात्र भी अखबार पढ़ रहा था, वह बोला– आपने जो अभी बोला, मैं भी उससे सहमत हूं। दोनो में परिचय हुआ। बड़बड़ाने बाले छात्र थे ठाकुर रामसिंह और उनसे सहमति प्रकट करने वाले थे बलराज मधोक।

गणवेश में स्वर्गीय ठाकुर रामसिंह जी

बलराज मधोक भी इतिहास में एम.ए. कर रहे थे। मधोक जी ने ठाकुर जी को संघ शाखा के विषय में बताया। फलस्वरूप सितम्बर १९४१ से ठाकुर जी ने संघ शाखा में जाना शुरु कर दिया।

संघ शाखा का वातावरण और संघ में प्रवर्तित विचार उन्हें बिल्कुल अपने अनुकूल लगे। कहीं कायरता नहीं, कहीं निराशा नहीं। खेलों में, गीतों में, चर्चाओं और भाषणों में उत्साह, निर्भयता, संघर्षशीलता का भाव और यह सब किस लिए? हिन्दू राष्ट्र को स्वतन्त्र कराने के लिए।

हिन्दू स्वभाव से ही कायर है, गांधी जी के इस वक्तव्य को पढ़ कर ठाकुर जी के मन को जो वेदना हुई थी, और उसके कारण उनके मुख से जो गुस्सा फूटा था, वह संघ शाखा में आकर शान्त तो हुआ ही, साथ ही उसे एक निश्चित दिशा भी मिली – भारत हिन्दू राष्ट्र है और उसे विदेशी शासन से मुक्त कराने का दायित्व भी हिन्दू समाज पर ही है, इसलिए हिन्दुओं को संगठित करना और उनमें क्षात्रवृति का निर्माण करना प्रथम कर्त्तव्य है। इस दिशा के मिल जाने के बाद वे संघ कार्य में रमते गए।

१९४२ में एम.ए. अन्तिम वर्ष की परीक्षा देने के बाद वे खण्डवा में लगे संघ के अधिकारी शिक्षण वर्ग में गए। यह वर्ग एक मास का था।

उन दिनों द्वितीय विश्वयुद्ध चल रहा था। जर्मनी जीत रहा था, इग्लैंड हार रहा था। सुभाष चन्द्र बोस अंग्रेजों की आंखों में धूल झोंक कर भारत से बाहर जा चुके थे। अंग्रेजों को एक जोरदार धक्का देकर देश से बाहर निकाला जा सकता है, ऐसी अनेकों की धारणा बन रही थी। ऐसी स्थिति में खण्डवा के अधिकारी शिक्षण वर्ग में सरसंघचालक श्री गुरुजी ने अपने उद्‌बोधन में कहा – ''हमारा कितना सौभाग्य है कि हम आज की संकटमय स्थिति में पैदा हुए है। संकट के पूर्वकाल को महापर्व काल समझिए। राष्ट्र के इतिहास में सदियों के बाद आने वाला स्वर्ण अवसर आज स्वयं चल कर हमारी ओर आ रहा है। इस समय यदि हम सोए रहेंगे, जो हमारे समान अभागे हम ही होंगे। संकटमय परिस्थिति में जो कुछ काम कर दिखाता है, उसी का नाम संसार में अमर होता है।''

इसके बाद श्री गुरुजी ने कहा – ''इस स्वर्ण अवसर का समुचित लाभ उठाने के लिए हमें अल्पकाल में ही संघकार्य का दस गुणा विस्तार करने की आवश्यकता है। इसके लिए चाहिए अपनी व्यक्तिगत इच्छाओं-आकांक्षाओं का होम करके, सुख-वैभव का परित्याग करके चौबीसों घंटे मातृभूमि की सेवा करने वाले पूर्णकालिक कार्यकर्ता।''

ठाकुर जी वकील बनना चाहते थे, इसलिए एम.ए. के बाद वे एल.एल.बी. में प्रवेश लेने वाले थे। श्री गुरुजी के इस आह्वान के बाद उन्होंने अपनी इस वकालत की इच्छा को लात मार दी और दो वर्ष के लिए संघ का प्रचारक बनने का निश्चय कर लिया। खण्डवा से वे लाहौर आए। लाहौर आकर पंजाब प्रान्त प्रचारक माधवराव जी से उनकी बात हुई और माधवराव जी ने उनकी नियुक्ति कांगड़ा जिला प्रचारक के नाते कर दी।

वे जुलाई-अगस्त १९४२ में कांगड़ा पहुंचे। इससे पूर्व इस जिले में कोई शाखा नहीं थी। ठाकुर जी ने अपने अनथक प्रयत्न से दो वर्ष में पूरे जिले में शाखाओं का जाल सा बिछा दिया। हर स्थान पर उन्होंने समाज में से चुन-चुन कर श्रेष्ठ लोगों को संघ का स्वयंसेवक बनाया।

ठाकुर जी की एक विशिष्ट कार्य प्रणाली थी। वे किसी भी नए स्थान पर जाते थे, तो पहले वहां के चार-पांच श्रेष्ठ व प्रभावशाली लोगों का पता लगाते थे। फिर उनके घरों पर जाकर उनसे मिलते थे और संघकार्य व देश की परिस्थिति के बारे में बातचीत करते थे। लम्बे समय से कांग्रेस द्वारा पिलाई जा रही 'अंहिसा' तथा हिन्दू-मुस्लिम एकता' की घुट्टी के कारण पहले तो लोग 'हिन्दू संगठन' की बात से और फिर देश को स्वतन्त्र कराने के लिए हमें सशस्त्र संघर्ष भी करना पड़ सकता है, इस सम्भावना से ही इन्कार करते थे लेकिन ठाकुर जी द्वारा दिए गए इतिहास के अनेक उदाहरणों से युक्त तर्कों के सामने उनके तर्क टिक नहीं पाते थे। जब उनको यह पता लगता था कि सामने वाला व्यक्ति केवल इतिहास में एम.ए. ही नहीं है, पंजाब विश्वविद्यालय ने उसके अध्ययन व योग्यता के कारण उसे स्वर्ण पदक भी प्रदान किया है और इतना ही नहीं, वह व्यक्ति अपना सारा कैरियर और घर-बार छोड़ कर केवल इसी कार्य के लिए यहां आया है तो वे सब ठाकुर जी के प्रति श्रद्धावनत हो जाते थे तथा संघकार्य के लिए सब प्रकार का सहयोग करने को उद्यत हो जाते थे।

सेरा थाना के डॉ. शमी शर्मा लिखते हैं – ''मेरे पिताजी पं. बदरीदत्त अवस्थी संस्कृत एवं हिन्दी साहित्य और ज्योतिष शास्त्र एवं कर्मकाण्ड के परम विद्वान थे। अनेक स्थानों से विद्वान लोग उनसे मिलने के लिए आते थे और विविध विषयों पर चर्चा करते थे। ऐसे ही एक विद्वान ठाकुर रामसिंह १९४३ में उनके पास आए और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के विचार एवं कार्य के बारे में उन्होंने पिताजी को जानकारी दी। ठाकुर रामसिंह जी पंजाब विश्वविद्यालय से इतिहास में एम.ए. थे और गोल्ड मैडलिस्ट थे। पिताजी ठाकुर जी के विचार एवं व्यवहार से बहुत प्रभावित हुए और उन्होंने संघ कार्य को सब प्रकार का सहयोग देने का आश्वासन दिया। पिताजी के कहने पर मेरे बड़े भाई प्रियम्बद जी ने सेरा थाना में शाखा शुरू कर दी और मैं भी शाखा में जाना शुरू हो गया।

ठाकुर जी दो वर्ष के लिए संघ-प्रचारक निकले थे। दो वर्ष पूर्ण हो जाने पर उनके मन में विचार आया कि अब मैं एल.एल.बी. करके आगे वकालत करूं। यह बात उन्होंने माधवराव मुले जी को कह भी दी। लेकिन तभी दूसरा विचार उनके मस्तिष्क में कौंधा। जो मैं अब तक दूसरों को कहकर प्रेरित करता रहा हूं, मेरा वर्तमान कदम तो उसके अनुसार नहीं है। यह तो मेरी कथनी और करनी में अन्तर हो गया। नहीं-नहीं रामसिंह, यह ठीक नहीं – मन में हूक मारी और तुरन्त जाकर माधवराव जी को कह दिया कि मैं प्रचारक से वापिस नहीं जा रहा।

माधवराव जी बहुत ही सूझ-बूझ वाले व्यक्ति थे। ठाकुर जी की सूझबूझ, दृढ़ता, निष्ठा और कुशलता उनके सामने थी। जैसे ही ठाकुर जी ने उनको कहा कि '' मैं प्रचारक से वापिस नहीं जा रहा'', इसके ठीक एक घंटे बाद माधवराव जी ने उन्हें अमृतसर विभाग का दायित्व सौंप दिया। अमृतसर विभाग में अमृतसर, गुरदासपुर, कांगड़ा और स्यालकोट ये चार जिले थे। अब ठाकुर जी विभाग प्रचारक हो गए। यह बात १९४४ के अन्त की है।

ठाकुर जी गांधी जी की इस बात से तो सहमत थे कि मुसलमान स्वभाव से ही आक्रामक है, लेकिन हिन्दू कायर है, इससे वे सहमत नहीं थे। उनका मत था कि हिन्दू स्वभाव से कायर नहीं है, लेकिन उसे जरुरत से ज्यादा अहिंसा का पाठ पढ़ा-पढ़ाकर कायर बना दिया गया है। कायर हिन्दू नहीं, हिन्दू नेता है। अपनी कायरतावश ये नेता बार-बार मुस्लिम गुण्डई के आगे घुटने टेकते रहते हैं। इसके लिए वे उदाहरण देते थे १९१६ के लखनऊ समझौते का, १९२०-२१ के खिलाफत आन्दोलन का और १९३२ के साम्प्रदायिक निर्णय का। (इसी साम्प्रदायिक निर्णय के विरोध में मदनमोहन मालवीय जी ने कांग्रेस छोड़ दी थी।) हिन्दू नेताओं से ही उत्साहित होकर १९४० में मुस्लिम लीग ने अपने लाहौर अधिवेशन में विधिवत्-पाकिस्तान प्रस्ताव भी पारित कर दिया था। जगह-जगह स्थानीय स्तर पर भी मुसलमान गुण्डई करने से बाज नहीं आते थे। होली का जलूस हो या रामनवमी का अथवा कोई और, मुसलमान छेड़खानी करते ही थे और कई बार विधिवत् हमले भी करते थे। हिन्दू उन हमलों का प्रतिकार करते थे। लेकिन कांग्रेस नेताओं का प्रयत्न यही रहता था कि हिन्दू प्रतिकार न करें, क्योंकि इससे हिन्दू-मुस्लिम एकता खतरे में पड़ जाएगी।

संघ इस स्थिति को बदलना चाहता था। हिन्दुओं की वीर-वृत्ति को पुनर्जागृत करना चाहता

था। हिन्दू आत्म-रक्षा में समर्थ हो, उसकी ओर कोई आंख उठा कर देखने का साहस न करें, ऐसी स्थिति लाना चाहता था। हिन्दू समाज जब स्व-संरक्षणक्षम बन जाएगा, तो उसके सामने न तो अंग्रेज टिक पाएंगे न मुसलमान, ऐसा संघ का विश्वास था।

विभाग प्रचारक बनने के बाद ठाकुर जी ने अमृतसर को अपना केन्द्र बनाया और सबसे पहले अमृतसर नगर को ही मजबूत करने का निश्चय किया। उन्होंने शाखाओं की संख्या बढ़ाने के बजाए स्वयंसेवक कर्तृत्ववान, निष्ठावान व अनुशासन प्रिय बने, इस बात पर ध्यान दिया। इसके लिए प्रत्येक स्वयंसेवक से उन्होंने अपना व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित किया। कुश्ती, दण्ड-संचालन और अनुशासन इन तीन पायों पर उन्होंने संघ-कार्य खड़ा किया। दो वर्ष के अन्दर-अन्दर अमृतसर नगर की शाखाओं की दैनिक उपस्थिति तीन हजार तक पहुंच गई।

अमृतसर में उन दिनों लगभग सौ अखाड़े थे। बहुत सारे स्वयंसेवक इन अखाड़ों में से ही संघ में आए। पहलवान दारासिंह भी वहां स्वयंसेवकों के साथ कुश्ती करता रहा है। बाद में चीनी पहलवान किंगकांग को इस दारासिंह ने ही पछाड़ा था।

अमृतसर मन्दिरों की नगरी थी। यहां हरिमन्दिर साहिब (दरबार साहिब), दुर्गयाणा मन्दिर तो थे ही, इनके अलावा भी सैकड़ों मन्दिर थे। इसके बावजूद यहां मुसलमान भी बड़ी संख्या में थे। उनकी जनसंख्या ४८ प्रतिशत थी। इसलिए मुसलमान यहां काफी गड़बड़िया करते रहते थे। फौजा बदमाश और हैदर बदमाश उनके अगुआ थे। हिन्दू लड़कों के गले से सोने की चेन उतार लेना, किसी भी राह चलते को लूट लेना, उसकी पिटाई कर देना, उनका सामान्य धन्धा था।

यह देख ठाकुर जी ने कुछ बलिष्ठ व निर्भीक स्वयंसेवकों की एक समिति बना दी। इसको नाम दिया गया 'हिन्दू सुरक्षा समिति' इसमें कुछ प्रौढ़ थे कुछ युवा थे। प्रौढ़ों में प्रमुख थे – बालकृष्ण चोपड़ा, लालचन्द लोइयां वाले, देवराज भ्रा परिवार वाले। नौजवानों में प्रमुख थे – सत्यपाल काका, किशोर चन्द, राम लुभाया, अमोलक राम, सत्यपाल, जियालाल, दर्शन कुमार, देवराज, शोरीलाल आदि। इस समिति के जिम्मे काम दिया गया – हिन्दुओं की सुरक्षा। कहीं कोई अत्याचार होने पर उसका प्रतिकार करना। इससे मुसलमानों की गुण्डागर्दी पर लगाम लगी और हिन्दुओं का मनोबल ऊंचा हुआ।

१९४० में मुस्लिम लीग ने अपने लाहौर अधिवेशन में पाकिस्तान प्रस्ताव पारित कर दिया, यद्यपि इसमें कहीं भी 'पाकिस्तान' शब्द का प्रयोग नहीं किया गया था। इस प्रस्ताव में मुसलमानों को अल्पसंख्यक न कहकर एक राष्ट्र कहा गया – ''मुसलमान अल्पसंख्या में नहीं है जैसाकि सामान्यतः समझा जाता है ....राष्ट्र की किसी भी परिभाषा के अनुसार मुसलमान एक राष्ट्र हैं और उनका अपना गृहदेश (Homeland), उनका अपना राज्य क्षेत्र और अपना राज्य होना ही चाहिए।''

स्पष्ट है कि लीग ने मुसलमानों के लिए भारत से काट कर अलग गृहदेश और राज्य की मांग की।

२७ जुलाई १९४६ को मुम्बई की अपनी बैठक में मुस्लिम लीग ने स्पष्ट घोषणा की–

''भारत के मुसलमान तब तक संतोष कर के नहीं बैठेंगे, जब तक तुरन्त ही स्वाधीन और प्रभुसत्ता सम्पन्न पाकिस्तान, राज्य की स्थापना नहीं हो जाती। अब समय आ गया है कि मुस्लिम राष्ट्र सीधी कार्यवाही प्रारम्भ करे।'' और सीधी कार्यवाही का दिन भी इसी बैठक में तय कर दिया गया – १६ अगस्त १६४६।

सीधी कार्यवाही का अर्थ भी जिन्ना ने अपने अध्यक्षीय भाषण में स्पष्ट कर दिया – ''आज हमने संवैधानिक उपायों को तिलांजलि दे दी है। जिन दो पक्षों के साथ हमने मोल-तोल किया, उनसे हमारी वार्ता त्रासदायी रही। वे हमारे सामने पिस्तौल ताने रहे। एक के हाथ में राज्य शक्ति और मशीन गनें थी, तो दूसरे के हाथ में असहयोग और विराट सविनय अवज्ञा आन्दोलन कर डंडा। इसका तो उत्तर देना ही होगा। हमारी जेब में भी पिस्तौल हैं।

यह मुसलमानों को संदेश था, हिन्दुओं के विरुद्ध उग्र से उग्रतर कारवाई करने का। हर छोटे-बड़े नगर में जलसे व जलूस होने लगे और उनमें आग उगलने वाले भाषण और नारे लगने लगे। जैसे जैसे १६ अगस्त निकट आता जा रहा था। मुसलमानों की गर्मी बढ़ती जा रही थी। लेकिन कांग्रेस द्वारा हिन्दुओं को दिए जा रहे ठण्डे इंजैक्शनों के कारण हिन्दू शान्त थे। ठीक १६ अगस्त के दिन कलकता में असावधान और निहत्थे हिन्दुओं पर मुसलमानों ने योजनाबद्ध रूप से आक्रमण करके लगभग पांच हजार हिन्दुओं को मौत के घाट उतार दिया। इसके एक महीना बाद बंगाल के ही नोआखली व टिप्पड़ा जिलों में कई दिनों तक हिन्दुओं को नरसंहार होता रहा। हिन्दू महिलाओं का अपहरण और शीलभंग भी व्यापक रूप से हुआ।

इसका परिणाम भी दूरगाामी हुआ। कांग्रेस अब तक जो अंहिसा, शान्ति और हिन्दू-मुस्लिम एकता के सपने हिन्दुओं को परोसती रहती थी, वे सारे सपने भंग हो गए। हिन्दुओं को लगने लगा कि आज कलकता व नोआखली में हिन्दू-संहार हुआ है, कल को हमारे यहां भी हो सकता है। इस स्थिति में संघ के द्वारा पिछले कई वर्षों से कही जा रही हिन्दू संगठन की महत्ता लोगों को स्वतः समझ में आने लगी और हिन्दू संघ की ओर आकृष्ट होने लगे।

पाकिस्तान की मांग में पंजाब भी शामिल था और पंजाब में मुस्लिम लीग बहुत-सक्रिय थी। मुस्लिम लीग की अत्यधिक सक्रियता देख पंजाब में संघ के अधिकारी सावधान हो गए। उन्हें यह भी पता लग गया कि मुस्लिम लीग हथियार इकट्ठे कर रही है और मुसलमानों में बांट रही है। इससे यह सुनिश्चित हो गया कि निकट भव्रिय में ही पंजाब भी ही कलकता और नोआखली काण्ड दोहराए जाएंगे।

ऐसी स्थिति में पंजाब के सभी प्रचारकों की एक बैठक डलहौजी में (आजकल हिमाचल प्रदेश के चम्बा जिले में) ठाकुर दत जी की कोठी में हुई। यह कोठी काफी बड़ी थी। उन दिनों इस कोठी में स्वामी सत्यानन्द जी ('राम शरणम्' के संस्थापक) भी पहले से ही ठहरे हुए थे। डलहौजी ठाकुर रामसिंह जी के ही क्षेत्र में था, इसलिए स्वाभाविक ही था कि इस बैठक की सारी व्यवस्था ठाकुर जी ने ही करवाई।

इस बैठक में सभी स्थानों पर चल रही मुसलमानों की उग्र गतिविधियों को देखते हुए भविष्य में मुसलमानों के साथ हिन्दुओं का संघर्ष अवश्यम्भावी है, यह निष्कर्ष निकाला गया। इस संघर्ष में हिन्दू कलकता और नोआखली की तहर निहत्थे ही न मारे जाएं, इसलिए उन्हें शस्त्र सन्नद्ध होने को प्रेरित करने का निश्चय किया गया।

इस बैठक में जो वृत्त आया उसके अनुसार सभी जिलों में मुस्लिम आक्रामकता बढ़ती जा रही थी। महाचिन्ता का विषय था। यदि इसे रोकने के उपाय नहीं किए गए तो कुछ ही समय बाद हिन्दुओं का पलायन भी शुरू हो सकता है। मुसलमान तर्क, बातचीत या भाषणों से कभी नहीं समझता। वह तभी समझता है, जब उसे सामने वाले का थप्पड़ दिखाई देता है। यह मुस्लिम प्रवृत्ति है। इसलिए इस बैठक में यह तय हुआ कि मुसलमानों के सशस्त्र आक्रमणों के प्रतिकार के लिए हिन्दू समाज को भी तैयार किया जाए।

इस बैठक की समाप्ति के कुछ ही दिनों बाद सीमा प्रान्त के हजारा जिला में मुसलमानों ने उपद्रव शुरु कर दिए। वहां हिन्दू केवल ५% ही थे। गांव-गांव में हिन्दुओं को लूटा गया, उनके घरों को जला दिया गया और महिलाओं का अपहरण व शीलभंग किया गया। मुस्लिम आक्रमणों व अत्याचारों का मुख्य गवाह बना हरिपुर, जहां सैकड़ों महिलाओं ने अपनी अस्मिता की रक्षा के लिए कुंओं में छंलागे लगा दी और कई पुरुषों को वृक्षों पर उल्टे टांग कर नीचे से आग लगा दी गई।

हजारा जिले से प्राण बचा कर भागे हिन्दू शरणार्थियों के लिए वाह नामक स्थान पर शिविर लगाया गया। इन शरणार्थियों की सहायता के लिए सर्वदलीय कमेटी बनाई गई, जिसका नाम रखा गया Punjab Riots sufferers Relief Committee। इसमें प्रमुख कांग्रेस के ही लोग थे। कांग्रेसियों कीपुरानी आदत है – न खुद काम करना, न दूसरे को करने देना, काम से ज्यादा नाम की चिन्ता करना। इस शरणार्थी शिविर के मामले में भी यही हुआ। कांग्रेस नेताओं की इच्छा-पूर्ति के लिए लोगों को कष्ट में रखा जाए, यह संघ के कार्यकर्त्ताओं को स्वीकार नहीं था। अतः चार-पांच दिन के ही बाद संघ की ओर से डॉ. गोकुलचन्द नारंग की अध्यक्षता में पंजाब रिलीफ कमेटी का गठन कर दिया गया और सारा काम इसी के माध्यम से होने लगा। अन्य संस्थाओं के भी लोग धीरे-धीरे इसी कमेटी के ही अन्तर्गत आ गए और पहली कमेटी कांग्रेसियों की स्वार्थ लिप्सा के कारण स्वतः की समाप्त हो गई।

हजारा काण्ड के बाद पंजाब की स्थिति सुधरी ही नहीं। मुसलमानों ने सर्वत्र हिन्दुओं पर भय और आंतक जमाना शुरू कर दिया। कभी भी कहीं भी वे दंगा कर देते थे और नुकसान हिन्दुओं का होता था। अतः 'पंजाब रिलीफ कमेटी' ही शाखाओं का गठन सभी जिलों में कर दिया गया। तदनुसार अमृतसर विभाग में भी ठाकुर जी ने कई जगह इस कमेटी का काम शुरू कराया।

अमृतसर में उन्होंने रिलीफ कमेटी का दायित्व सौंपा श्री गोवर्धन लाल चोपड़ा को। चोपड़ा जी बहुत ही समझदार और योग्य व्यक्ति थे और उन दिनों अमृतसर की प्रभात शाखाओं के कार्यवाह थे। आगे वे बहुत सारे काम रिलीफ कमेटी के ही माध्यम से हुए। दंगा-पीड़ितों के लिए वस्त्र व खाद्य-सामग्री की व्यवस्था के साथ-साथ घायलों के इलाज हेतु डॉक्टरों की टीम व औषधियां, संघर्ष

की अवस्था में प्रतिकार के लिए शस्त्र संग्रह, आग बुझाने के लिए फायर ब्रिगेड, त्वरित आवागमन के लिए मोटर साईकिल व जीपों का क्रय तथा इसे सबके लिए धन-संग्रह। यह कोई छोटे-मोटे काम नहीं थे। इनमें से प्रत्येक काम बहुत महत्त्वपूर्ण व पूरी जिम्मेवारी का था।

एक कार्यकर्ता थे देवीदयाल। वे सब प्रकार के शस्त्रों को चलाना जानते थे। ठाकुर जी ने उनसे शस्त्रों को इकट्ठे करने के लिए कहा। यह भी कहा कि वे अन्य स्वयंसेवकों को भी शस्त्र चलाना सिखा दें। देवीदयाल जी ने सीमाप्रान्त से कई बार में शस्त्र मंगाए और बहुत से स्वयंसेवकों को उनका चलाना भी सिखा दिया।

४ मार्च १९४६ को मुस्लिम लीग ने पंजाब में कई नगरों के एक साथ दंगे शुरू कर दिए। बाकी जगह तो पांच-सात दिन में दंगे शान्त हो गए, किन्तु अमृतसर में ये लगातार छः महीने तक चलते रहे।

इन दंगों की शुरूआत ही मुसलमानों ने अग्निकांडों से की। लौहगढ़ गेट, हाल बाजार, कटड़ा कर्मसिंह आदि से ऊंची-ऊंची लपटें उठनी शुरु हो गई। छुरे और तलवारें लेकर मुसलमानों के हजूम के हजूम कई क्षेत्रों में निकल पड़े। स्वयंसेवकों ने सभी क्षेत्रों में दंगाईया का डट कर मुकाबला किया और उन्हें आगे बढ़ने से रोक दिया। ६ मार्च को मुसलमानों ने शरीफपुरा के पास एक रेलगाड़ी को रोक कर उसमें बैठे हिन्दू यात्रियों को काट डाला। यह पंजाब की पहली गाड़ी थी जो काटी गई। हर दिन कभी कहीं और कभी कहीं, मुस्लिम आक्रमण जारी रहे। ठाकुर जी उन दिनों अमृतसर में नहीं थे। वे प्रवास पर थे।

७-८ मार्च को ठाकुर जी जम्मू थे। वहां विभाग प्रचारको की बैठक थी। इसी दौरान डॉ. बलदेव प्रकाश जी ने ठाकुर जी को जम्मू फोन किया। ठाकुर जी के ही अनुसार डॉ. बलदेव प्रकाश का फोन मुझे जम्मू आया। उसने बताया कि अमृतसर शहर में काफी गडबढ़ चल रही है। मुसलमानों के झुण्ड के झुण्ड नारे लगाते हुए घूम रहे हैं। दरबार साहब से भी फोन आ रहे हैं कि मुसलमान कभी भी दरबार साहब पर हमला कर सकते हैं। हम क्या करें? मैंने कहा कि मैं यहां से क्या बता सकता हूं, यह तो तुम्हें ही वहां देखना है कि तुम क्या कर सकते हो।

बलदेव प्रकाश बोला कि शहर में तो कर्फ्यू है और बिना कर्फ्यू पास के शहर के अन्दर जाया नहीं जा सकता। हमारे पास कर्फ्यू पास है नहीं। मुसलमानों के लिए कोई कर्फ्यू नहीं है। वे जगह-जगह इकट्ठे होकर 'अल्ला हो अकबर' आदि के नारे लगा रहे हैं। पुलिस उन्हें नहीं रोक रही। हिन्दू काफी भयभीत हैं। ऐसी स्थिति में आपका क्या मार्गदर्शन है।

मैंने उतर दिया - कोई मार्गदर्शन नहीं। परिस्थिति के अनुसार जो ठीक लगता हो करो।

बलदेव प्रकाश - माधवराव जी से बात हो सकती है क्या? माधवराव जी भी पास ही बैठे थे। मैंने फोन उन्हें दे दिया। माधवराव जी ने भी यही कहा कि हम यहां से कुछ नहीं बता सकते, आप अपने हिसाब से जो उचित लगता हो करो।

इसके बाद डॉ. बलदेव प्रकाश जी ने जो किया, वह स्वर्ण अक्षरों में लिखने योग्य है।

ठाकुर जी जब जम्मू से वापिस अमृतसर आए, तो उन्होंने भविष्य में होने वाले और भी विकट संघर्षों की कल्पना करते हुए स्थायी व्यवस्था बनाई। इसके अन्तर्गत कई विभाग बनाए गए – गुप्तचर विभाग, शस्त्र विभाग, यातायात (ट्रास्पोर्ट) विभाग, अग्नि शमन विभाग, चिकित्सा विभाग, सूचना विभाग, कानूनी सहायता विभाग, धन-संग्रह विभाग, शरणार्थियों के लिए खाद्य सामग्री व वस्त्र विभाग आदि आदि। प्रत्येक विभाग का एक-एक प्रमुख भी तय कर दिया गया। प्रत्येक प्रमुख अपने काम का पूर्ण जिम्मेवार एवं समय स्थिति के अनुसार स्वयं निर्णय लेने में स्वतन्त्र था।

ये सारी व्यवस्थाएं कैसे सफलतापूर्वक चली, इस विषय में ठाकुर जी के ही शब्दों में जानना उपयुक्त रहेगा।

उन दिनों व्यवस्था और वातावरण ही ऐसा था कि कोई अपना काम दूसरे को बताता नहीं था। किसके जिम्मे क्या है, दूसरे को पता नहीं होता था। मैंने शस्त्रों को इकट्ठा करने के लिए देवीदयाल से बात की थी और उसे कहा था कि तुम कैसे करते हो, कहां से करते हो, किसी को नहीं बताना, मुझे भी नहीं। यह सब मार्च के बाद शुरू हुआ। देवीदयाल सब तरह के शस्त्र चलाना जानता था। उसने शस्त्र मंगाए भी और स्वयंसेवकों को सिखाए भी। घरों में ही वह पांच मिनट में सिखा देता था। स्टेनगन व ब्रेनगन भी वह चलाता था। बम बनाने की विधि लाहौर से आई थी डॉ. सूरज प्रकाश के ग्रुप से।

यह सामान्य बात नहीं थी कि स्वयंसेवक बीस-बीस हजार रुपया लेकर शस्त्र लेने जाते थे। पांच फायर ब्रिगेड खरीदे थे। मिलिटरी डिस्पोजल की कुछ गाड़िया-कमाण्ड कारें भी खरीदी थीं।

फोन उन दिनों केवल लारेन्स रोड कार्यालय पर था। शहर में कटड़ा दूलों में गली जट्टां वाली में सेठ जगत बन्धु के कारखाने में फोन था। और किसी स्वयंसेवक के घर नहीं था। शहर में कर्फ्यू रहता था। सूचना का कोई माध्यम नहीं था। शहर की कोई भी सूचना सेठ जगतबन्धु के कारखाने से ही लारेन्स रोड कार्यालय को और लारेन्स रोड कार्यालय से शहर को दी जा रही थी। इसके अतिरिक्त दरबार साहब में भी फोन था। वहां से भी सम्पर्क रहता था।

मुस्लिम लीग अमृतसर को हर कीमत पर पाकिस्तान में लेना चाहती थी। अमृतसर पर कब्जा हो जाने पर सिखों का मनोबल टूट जाएगा। लाहौर, गुरदासपुर, जम्मू कश्मीर रियासत, चम्बा, कांगड़ा आदि को पाकिस्तान में कर लेने के लिए कुछ खास नहीं करना पड़ेगा, ऐसी उसकी सोच थी। अमृतसर से शुरू होकर बंगाल तक जी.टी.रोड के आस-पास जितने भी मुस्लिम प्रभाव वाले क्षेत्र थे, उन सब में मुस्लिम लीग ने पूरी तैयारी कर रखी थी। जालन्धर, अम्बाला, करनाल, दिल्ली, सहारनपुर, मुजफ्फर नगर, बरेली, आगरा, मेवात आदि यही सारा क्षेत्र था, जो जिन्ना ने पश्चिमी व पूर्वी पाकिस्तान के बीच में गलियारा के रूप में मांगा था।

संघ के स्वयंसेवकों ने सब तरह के तरीके अपनाए, सब तरह के शस्त्र प्रयोग किए। बमों का भी खुल कर प्रयोग किया। अकेले नमक मण्डी के संघर्ष में ही सौ से अधिक बमों का प्रयोग हुआ। जान हथेली पर रख कर संघर्ष किया। युद्ध किया। युद्ध कोई रसगुल्ले से नहीं किया जाता। अमृतसर

के स्वयंसेवकों द्वारा लगातार छः महीने तक लड़ा गया यह युद्ध ही था, जिसने मुस्लिम लीग की सारी भावी योजनाओं पर पानी फेर दिया। इसमें कई स्वयंसेवकों ने अपने प्राण गंवा दिए, किन्तु अपने कर्तव्य की वेदी से पीछे नहीं हटे।

साल के शुरू में लाहौर में प्रमुख कार्यकर्ताओं की बैठक हुई थी। उसमें माधवराव जी से पूछा गया कि अगर कहीं गड़बड़ हो जाए तो क्या करना? उस स्थिति के लिए आपका क्या निर्देश है? माधवराव जी का उतर था – कोई निर्देश नहीं। जब जिस प्रकार से आप को लगे, जो उचित लगे, करो। किसी सूचना या निर्देश का इन्तजार नहीं करना।

आरम्भ में छतों पर रेत व ईंटे इकट्ठी की गई। दुकानों पर लोहें की छड़ें एवं घरों पर साइकिल की चेन व लाठी रखने का आग्रह सभी हिन्दुओं से किया गया। इसके उपरान्त जैसे-जैसे मुस्लिम आक्रमणों की विकटता बढ़ती गई, हमारे स्वयंसेवक भी साहस व साधनों, दोनों की दृष्टि से विकट से विकटतर बनते गए।

संघ स्वयंसेवकों के प्रबल प्रतिरोध के फलस्वरूप जब मुसलमानों के पैर कई जगह से उखड़ने लगे तो पंजाब मुस्लिम लीग के नेता इफ्तिखार हुसैन खां (नबाब ममदौत) ने अमृतसर जिले के गांव-गांव का दौरा किया और मुसलमानों को हर स्थिति में डटे रहने को कहा। इतना ही नहीं, मुस्लिम लीग क्योंकि, हर कीमत पर अमृतसर को जीतना चाहती थी, इसलिए मुस्लिम नेशनल गार्ड्स का मुख्यालय लाहौर से बदलकर अमृतसर में ले आए। यह मुख्यालय एम.ए.ओ. कॉलेज में बनाया गया। नेशनल मुस्लिम गार्ड्स मुस्लिम लीग का सैनिक संगठन था।

ठाकुर जी ने स्वयंसेवकों को एक ही घुट्टी पिलाई थी – समय और स्थिति को पहचानो तथा तदनुसार स्वयंप्रेरणा से कार्य करो। यह घुट्टी स्वयंसेवकों में कितनी पहुंची, इसका एक ही उदाहरण यहां पर्याप्त रहेगा।

५ मार्च १९४६ ही यह घटना है। तनसुखराय तालबाड़ गली तिवारियों की प्रभात शाखा का मुख्य शिक्षक था। वह किसी काम से बाजार गया तो उसने एम.ए. ओ. कॉलेज में काफी हलचल देखी। निकट जाने पर उसने देखा कि कॉलेज के अन्दर से बोरियों में कुछ सामान दिया जा रहा है और मुसलमान उसे ले जा रहे हैं। वह सामान लेने के लिए वहां काफी भीड़ लगी है। तनसुखराय का माथा ठनका। वह तुरन्त घर लौटा। घर आकर उसने मुसलमानों की तरह का रेशमी कुर्ता और पाजामा पहना और पहुंच गया कॉलेज में और सामान मांगा। उसे भी एक बोरी दे दी गई। देने वाले ने पूछा - कहां जाना है? तनसुखराय बोला - लोहगढ़। देने वाले ने कहा – वहां तो हिन्दू हैं। तनसुखराय ने बड़े विश्वास से उतर दिया – किस काफिर में हिम्मत है कि मुझे हाथ भी लगा जाए। देने वाले ने उसे शाबाशी दी और जाने दिया।

इस बोरी में लोहे के हैल्मेट थे। उसी दिन शाम को ३-४ बजे के लगभग मुसलमानों ने हिन्दुओं पर ईंट-पत्थरों से हमले शुरू कर दिए। हमले शुरू होने से बस आधा घण्टा पहले ही तनसुख हैल्मेट की बोरी लेकर आया था। ये हैल्मेट बड़े काम आए।

गुप्तचर विभाग के एक कार्यकर्ता श्री राम लुभाया ने इस लेखक को बताया – अमृतसर में हम सात स्वयंसेवकों का ग्रुप था। उसका नाम था हरावल दास्ता। हम लोग मुसलमानी वेश पहन कर मुस्लिम क्षेत्रों में जाते थे। सलवार या तम्बा हमारी पोशाक थी, लेकिन ज्यादातर हम सलवार पहनते थे। हमने अपने नाम भी मुसलमानी रखे हुए थे। मेरा नाम रफीक था। अन्य साथी थे इस्लाम दीन, अहमद, इमाम, माज्जा आदि। इन साथियों के वास्तविक हिन्दू नाम क्या थे, वे अब मुझे याद नहीं। हम उन्हीं इलाकों में जाते थे, जहां हमें पहचानने वाला कोई मुसलमान न हो। हमने नमाज तो नहीं सीखी थी, लेकिन याद कर लिया था - 'या अल्ला बिस्मिल्ला रसूलिल्ला................', 'खुदा रहम करे' आदि। कुरान की एक आयत भी याद कर ली थी, जो अब याद नहीं। हम जानकारी और भेद लेने के लिए जाते थे, मारने के लिए नहीं।

२० या २१ जुलाई से पंजाब प्रान्त का संघ शिक्षा वर्ग फगवाड़ा में आरम्भ हुआ। यह २० अगस्त तक चलना था। ठाकुर जी पूरा समय इस वर्ग में ही थे। २२०० स्वयंसेवक इस वर्ग में शिक्षार्थी थे। इससे पूर्व ३ जून को यह घोषणा हो चुकी थी कि भारत का विभाजन कर के पाकिस्तान बना दिया जाएगा। इसलिए शिक्षावर्ग में इस विषय पर काफी चर्चा व चिन्तन होता रहता था। जुलाई के अन्तिम सप्ताह में अनेक स्थानो पर मुस्लिम आक्रमण होने शुरु हो गए। हिन्दू वहां से भागने लगे। उन स्थानों के संघ कार्यकर्ता अपने अपने स्थानों की जानकारी देने के लिए शिक्षा वर्ग में पहुंचने लगे। अगस्त के प्रथम सप्ताह तक ऐसे लगभग १००० कार्यकर्ता शिक्षावर्ग में एकत्रित हो गए थे। प्रान्त में स्थिति भीषण से भीषणतर बनती जा रही थी। केन्द्र की नेहरु सरकार की ऊंची-ऊंची और लम्बी-लम्बी घोषणाओं से लोग तंग आ गए थे, क्योंकि उन घोषणाओं और आश्वासनों के बावजूद हिन्दुओं की हत्याएं, लूट, आगजनी व महिलाओं के अपहरण प्रतिदिन बढ़ते जा रहे थे। ऐसी स्थिति में संघ शिक्षावर्ग को चलाए रखना उचित नहीं समझा गया और समय से पूर्व ही १२ अगस्त को प्रातः समाप्त कर दिया गया।

१२ अगस्त को ठाकुर जी जब शिक्षा वर्ग से चलने लगे, तो प्रो. धर्मवीर जी जो उस समय प्रान्त कार्यवाह थे, ने ठाकुर जी को कहा – ठाकुर जी! पश्चिमी पंजाब से प्रतिदिन हिन्दू शरणार्थी हजारों की संख्या में अमृतसर पहुंच रहे हैं। मन्दिर, गुरुद्वारे, स्कूल, धर्मशालाएं उन से भर गई हैं। और भी आने वाले शरणार्थियों के लिए जगह बनाने की जरुरत है। इसलिए अमृतसर को जल्दी से जल्दी मुसलमानों से खाली कराओ।

ठाकुर जी ने कहा – ठीक है, एक सप्ताह में अमृतसर मुस्लिम विहीन हो जाएगा। ठाकुर जी अमृतसर आए। कार्यकर्ताओं को तदनुसार निर्देश दिया। परिणामस्वरुप १४ अगस्त को कटड़ा कर्म सिंह से सभी मुसलमान निकाल दिए गए। कुछ कादियां चले गए और कुछ लाहौर। तीन चार दिन में शहर की चार दिवारी के अन्दर के सारे क्षेत्र खाली करा लिए गए। चार दिवारी के १२ गेट हैं, और इन सब गेटों के बाहर मुस्लिम बस्तियां थीं। इन सारी बस्तियों को एक साथ और एक ही झटके में खाली कराने का निश्चय किया गया। यह कैसे हुआ, यह बताया अमृतसर के कार्यकर्ता श्री मोती लाल

तालवाड़ ने –

मुझे लारेन्स रोड संघ कार्यालय से देवीदयाल जी ने फोन किया कि एक स्टेशन बैगन लेकर कार्यालय पहुचो। मैं रामाश्रय दुग्गल के सुपुत्र श्री मुनिलाल दुग्गल के पास गया और उसे अपनी स्टेशन बैगन लेकर चलने के लिए कहा। हमने वीर सेन ट्रंकों वाले को साथ ले लिया। तीनों स्टेशन बैगन से चले। कर्फ्यू लगा हुआ था, लेकिन उस समय दो-तीन घंटे के लिए खुला था। हाल बाजार में हम दवाई लेने के बहाने गए। एक दुकान से कुछ दवाई ली भी और आगे चल दिए। कार्यालय पहुंचे, तो देवीदयाल जी ने एक अटैची केस दिया और मुझे से अलग से कहा इसमें ११०० गोलियां हैं, आज ही रात को सभी १२ दरवाजों पर पहुंचानी है। एक ही समय पर सब दरवाजों पर गोलियां चलेंगी।

हम वापिस चले। हाल बाजार में बलोच मिलिटरी ने हमारी तलाशी ली। भगवान की कृपा से उन्होंने स्टेशन बैगन के आगे के हिस्से में ही तलाशी ली, पीछे के हिस्से में जहां अटेची पड़ा था, नहीं ली। हम बच गए और ईश्वर की ही योजना मानते हुए आगे चल पड़े। हम पहले रामाश्रय दुग्गल के घर पहुंचे, जो कि कूचा कल्याणदास में था। वहां उन गोलियों के १२ हिस्से किए और उन्हें १२ थैलियों में डाला। अब रामाश्रय व वीरसेन को वहीं छोड़, मैंने दूसरे दो साथी पं. गोपीचन्द शर्मा और पं. गुरदयाल को साथ लिया। बाहर गेटों के निश्चित ठिकानों पर वे गोलियां पहुंचाने के लिए हम लोग पैदल ही चले। रास्ते में गुरु बाजार में थानेदार पं. गौरी शंकर की ड्यूटी थी। उसने रोका नहीं, हमारी सहायता ही की। बाकी सारा रास्ता भी हिन्दू इलाके का था। इसलिए हमें कोई दिक्कत नहीं आई। सायंकाल ७.०० बजे से पहले-पहले हमने सभी निश्चित स्थानों पर वे थैलियां पहुंचा दीं। हम वापिस आ गए।

रात्रि ठीक ८.०० बजे सभी १२ दरवाजों से एक साथ गोलियां चलने लगी। मुस्लिम बस्तियों में डर छा गया और सभी मुसलमान सुबह होते ही अपने-अपने सिर पर चारपाई, ट्रंक, बर्तन आदि उठा कर स्टेशन की तरफ जाने लगे। कुछ ही घंटे में वे सब बस्तियां खाली हो गई। सारे शहर में संघ की वाह-वाह हो गई।

मोतीलाल जी ने आगे बताया – अगले तीन दिन (७२ घंटे) तक अमृतसर में एक प्रकार से गोवर्धन लाल चोपड़ा जी का ही राज रहा। उन तीन दिन मैं उनके साथ ही था। मैं उनकी जीप चलाता था। मिलिटरी के अधिकारी भी उनके साथ चलते थे और उनसे ही आदेश प्राप्त करते थे। सरकारी प्रशासन तो बिल्कुल ठप्प था। चोपड़ा जी ने सारे अमृतसर के कई बार चक्कर लगाए और सारी व्यवस्थाएं ठीक कीं।

इस प्रकार ठाकुर जी द्वारा प्रो. धर्मवीर जी को दिया गया वचन पूर्ण हुआ। शरणार्थियों को मुसलमानों द्वारा खाली किए गए मुहल्लों में बसाना शुरु कर दिया गया।

एक बार सूचना मिली कि धर्मशाला व पालमपुर में मुसलमान कुछ करने वाले हैं। उनकी सहायता के लिए अमृतसर से एक कार में गोला-बारूद आदि जा रहा है। सूचना मिलते ही ठाकुर जी ने तीन-चार स्वयंसेवकों को साथ लिया और स्वयं कमाण्ड कार से उस कार का पीछा किया। अमृतसर से

लेकर दीनानगर तक उसका पीछा किया गया, लेकिन वह कार मिली नहीं। बाद में पता लगा कि वह पहले ही पुलिस द्वारा पकड़ ली गई थी और ठाकुर जी उससे बहुत आगे निकल गए थी। पुलिस ने उस कार में से काफी समान बरामद किया था।

कांग्रेस द्वारा संचालित सेवा-शिविर में बहुत कम ही लोग पहुंचते थे, वह प्रायः खाली सा रहता था। किन्तु संघ द्वारा संचालित सेवा-शिविर हमेशा भरा रहता था। इससे कांग्रेस के लोग संघ से क्षुब्ध रहते थे। अमृतसर में एक कांग्रेस नेत्री थी माई आतो। वह एक बार संघ के सेवा शिविर में सामान ले जा रहे पंजाब रिलीफ कमेटी के ट्रक के आगे लेट गई। काफी मिन्नतें करने पर भी जब वह नहीं उठी, तो ठाकुर जी ने ट्रक ड्राईवर स्वयंसेवक को कहा कि ट्रक इसके ऊपर से निकाल कर ले जाओ। ड्राईवर ने ट्रक स्टार्ट किया और जैसे ही ट्रक थोड़ा आगे बढ़ा कि माई आतो उठ कर भाग गई।

विभाजन के बाद पंजाब रिलीफ कमेटी का काम बहुत बढ़ गया था, इसलिए इसका दायित्व भी माधवराव जी ने ठाकुर जी को दे दिया। लाहौर में बहुत सी जीपें, कारें, कामाण्ड कारें, ट्रक, मोटर साइकिल आदि रिलीफ कमेटी के द्वारा खरीदे गए थे। इस सब के रख-रखाव के लिए वाकायदा एक वर्कशाप भी वहां बनाई गई थी। विभाजन के बाद वे सारे वाहन और वर्कशाप जालन्धर ले आए गए। इस वर्कशाप की देख-रेख का भी काम ठाकुर जी के जिम्मे लगाया गया।

पंजाब में उस समय ४०० के लगभग प्रचारक थे। उन सबकी भी नई नियुक्तियां की गईं। ठाकुर रामसिंह जी, पं. लेखराज जी, बाबूराव पालधीकर जी, बसन्त राव आगरकर जी और गंगा विष्णु जी, इन पांचों को सह प्रान्त प्रचारक बना दिया गया।

४ फरवरी १९४८ को गांधी हत्या का आरोप लगा कर सरकार ने संघ पर प्रतिबन्ध लगा दिया और देश भर में संघ के हजारों कार्यकर्ताओं को जेलों में ठूंस दिया। कुछ दिन बाद जब सरकारी झूठ के बादल छंटने लगे तो देश के अनेक श्रेष्ठ लोगों ने संघ पर प्रतिबन्ध उठाने के लिए सरकार से आग्रह करने वाले बयान समाचार – पत्रों में देने शुरू किए। ठाकुर रामसिंह जी मास्टर तारासिंह से अमृतसर में उनकी कोठी पर ही जाकर मिले और आग्रह किया कि वे भी ऐसा एक बयान अखबारों में दें। मास्टर तारासिंह ने उतर दिया – मैं गुरु गोलवलकर पर विश्वास करता हूं, सावरकर पर विश्वास करता हूं, पर इन नुकीली टोपी वालों पर मेरा बिल्कुल विश्वास नहीं है। मैं इस कांग्रेस सरकार को अच्छी तरह जानता हूं। पंजाब में लाखों लोग मारे गए और करीब एक करोड़ लोग उजड़ गए, इसी सरकार की मेहरबानी से। अपनी नाकामी को छिपाने के लिए इस सरकार ने आप लोगों पर पाबन्दी लगा दी है, जिन लोगों ने जी-जान लगा कर हिन्दुओं और सिखों की रक्षा की। आप चिन्ता न करें। मुझे अखबारी बयान देने की जरुरत नहीं। कल एक पब्लिक मीटिंग है और मैं उसमें बोलने वाला हूं। उस मीटिंग में मैं खुल कर इस बारे में भी बोलूंगा।''

अगले दिन मास्टर तारासिंह ने सार्वजनिक सभा में संघ पर लगाए गए प्रतिबन्ध का विरोध जोरदार ढंग से किया। यह सभा रामानन्द बाग में हुई थी और ठाकुर जी भी सुनने गए थे। इसी काम के लिए ठाकुर जी जनरल मोहन से भी मिलने गए थे, लेकिन उसने टरका दिया था। ठाकुर जी भी

सत्याग्रह करके जेल गए। इन्हें योल कैम्प (कांगड़ा) की जेल मे रखा गया। इस जेल में संघ के अनेक वरिष्ठ अधिकारी थे – भय्या जी दाणी, माधवराव मुले, प्रो. धर्मवीर आदि आदि। जेल में रहते हुए सरकारी ज्यादतियों के विरुद्ध ठाकुर जी ने व अन्य अनेक कार्यकर्ताओं ने एक महीने की भूख हड़ताल भी रखी।

आखिर बदनामी के डर से सरकार को झख मार कर प्रतिबन्ध उठाना पड़ा। १२ जुलाई १९४९ को प्रतिबन्ध उठा। उसके बाद सरसंघचालक श्री गुरुजी का देशव्यापी दौरा आरम्भ हुआ। पंजाब में वे सितम्बर मास में आए। अमृतसर विभाग का कार्यक्रम रानीबाग में हुआ। रानीबाग शहर से दूर व एक तरफ था। फिर भी वह कार्यक्रम अभूतपूर्व हुआ। आज भी उस कार्यक्रम की याद अमृतसर के स्वयंसेवक करते हैं। कार्यक्रम की सफलता के लिए ठाकुर जी ने दिन-रात एक कर दिया था।

पंजाब में श्रीगुरुजी का प्रवास समाप्त हो जाने के बाद बालासाहब देवरस ने पंजाब के सभी सह प्रान्त प्रचारकों को दिल्ली बुलाया। कुल पांच सह प्रान्त प्रचारक बनाए गए थे। इनमें एक पं. लेखराज जी को प्रतिबन्ध के दौरान ही राजस्थान प्रान्त प्रचारक बना कर राजस्थान भेज दिया गया था। ठाकुर जी सहित शेष चारों दिल्ली पहुंचे। बालासाहब ने चारों को ही कलकता जाकर एकनाथ रानाडे जी से मिलने के लिए कहा। पहले विभाजन काल की व्यस्तता, फिर प्रतिबन्ध और उसमें भी एक मास की भूख-हड़ताल, तदुपरान्त श्रीगुरुजी के कार्यक्रम हेतु निरन्तर भाग-दौड़। शरीर थक चुके हुए थे। कई वर्षों से घरवालों से भी मिलना सम्भव नहीं हुआ था। अतः चारों ने कहा कि कलकता जाने से पूर्व एक बार हम घर हो तो आएं। बालासाहब ने कहा – नहीं, घर पर नहीं जाना। सीधे कलकता पहुंचों वहां गुरुजी भी पहुंचने वाले हैं, उनसे पूर्व आप लोगों को वहां पहुंचना है।

चारों कलकता पहुंचे। वहां गुरुजी का कार्यक्रम था। गुरु जी आए और चारों की नई नियुक्तियां कर दी। ठाकुर जी को आसाम प्रान्त प्रचारक नियुक्त किया और उनके साथ गंगा विष्णु जी को डिब्रूगढ़ का प्रचारक बनाकर भेजा। बाद में मणिपुर में भी काम गंगा विष्णु जी ने ही शुरु किया। बाबूराव पालधीकर जी को उड़ीसा प्रान्त प्रचारक और उनके साथ बसन्तराव आगरकर जी को कहीं भेजा। बाद में बसन्त आगरकर वापिस आ गए थे, उनकी मां काफी बीमार थी।

बाद में एक बार एकनाथ जी ने ठाकुर जी को बताया था कि पहले राजस्थान में आपको ही भेजने वाले थे, लेकिन पंजाब रिलीफ कमेटी का काम आपके ही जिम्मे होने के कारण आपको नहीं भेजा गया।

इस प्रकार ठाकुर जी राजस्थान की बजाय दिसम्बर १९४९ में आसाम पहुंच गए।

एफ १०९, सैक्टर २७,
नौएडा - २०१३०१

संवीक्षण ✍

भारतीय संस्कृति-सभ्यता की आत्मा : सरस्वती नदी

रामशरण युयुत्सु

संस्कृति शब्द संस्कृत भाषा में 'सम' उपसर्गपूर्वक 'कृ' धातु से 'कृन' प्रत्यय लगाने पर निष्पन्न होता है। इसका अक्षर अर्थ है 'संस्कार—निखरना या निखारना।' अतः जो चीज हमारे जीवन के प्रत्येक पक्ष को निखारती है, वह संस्कृति है।

हरियाणवी संस्कृति भारतीय संस्कृति से भिन्न कोई अलग-थलग वस्तु नहीं है। लेकिन जब हम भारतीय संस्कृति के लोग—कल्याणकारी स्वरूप को देखते हैं, तो पाते हैं, कि यह तत्त्व यहां, हरियाणा क्षेत्र में, बहुत ज्यादा विकसित हुआ है। दूसरे शब्दों में हरियाणावासियों की लोक उपकार की सांस्कृतिक धरोहर बहुत पुरानी है। आज से हजारों-हजारों वर्ष पूर्व हमारे पुरखों को सरस्वती के पवित्र जल के साथ यहां के ब्रह्मर्षियों ने ऋग्वेद की इस सूक्ति के साथ इसकी घूंटी दी थी —

शुद्धाः पूता भवत यज्ञियासः।।

अर्थात् शुद्ध और पवित्र बनो तथा परोपकारमय जीवन वाले हो। मनुष्य जीवन का सार तो परमार्थ में है।

शतहस्त समाहर सहस्रहस्त सं किर अर्थात् सैकड़ों हाथों से इकट्ठा करों और हजारों हाथों में बांटो।

भारतीय संस्कृति का परिचय ऋग्वेद के सूक्तों से होता है। उनमें वर्णित विचार ही, वे आधार-स्तम्भ हैं, जिन पर हिन्दू सभ्यता खड़ी है। ऋग्वेदीय सूक्त प्राचीन आर्यो के धर्म, सामाजिक संगठन, आर्थिक तथा सामाजिक रीतियों और उनके नैतिक आदर्शों की विज्ञप्ति के प्रधान स्रोत हैं। इस भारतीय संस्कृति के मुख्य मूलाधार दो हैं— भारतवर्ष की भूमि और वैदिक वाङ्मय।

यह विश्व का सर्वमान्य सिद्धान्त है कि उपलब्ध वाङ्मय में ऋग्वेद सरस्वती की वीणा की प्रथम झंकार है। प्राचीन भारतीय ऋषियों ने वैदिक मन्त्रों का साक्षात्कार किया और महर्षि वेदव्यास ने उनका संकलन किया। ऋग्वेद में जिस संस्कृति का और समाज जीवन का वर्णन है, वह मानव जीवन की अति उच्च अवस्था है।

अब यह भली भान्ति विदित हो चुका है कि पुरातत्व से प्रकाश में आई दक्षिण एशिया की प्राचीन सभ्यता का केन्द्र सिन्धु नहीं, सरस्वती घाटी था। इसी कारण अब इसे सिन्धु या हड़प्पा सभ्यता के स्थान पर सिन्धु-सरस्वती सभ्यता कहा जाने लगा है।

नवीन शोध-कार्यों से विदित होता है कि इस सभ्यता का प्रसार सरस्वती घाटी से प्रथमतः सिन्धु घाटी के निचले भागों में और तदुपरान्त अन्य क्षेत्रों में हुआ है। यह प्रवाह दिशा सरस्वती की ओर है, अतः इसे सरस्वती सिन्धु सभ्यता कहना अधिक समीचीन है। यह स्पष्ट किया गया है कि

वैदिक एवं सरस्वती-सिन्धु सभ्यताएं परस्पर भिन्न नहीं, अपितु एक ही मूल भारतीय सारस्वत सभ्यता की क्रमशः साहित्यिक एवं पुरातात्विक अभिव्यक्तियां हैं।

ऋग्वैदिक और सरस्वती-सिन्धु सभ्यताओं के भौगोलिक क्षितिज एक है और उनकी सांस्कृतिक संरचनाओं में अद्‌भुत सादृश्य है। कालक्रम की दृष्टि से सरस्वती सिन्धु सभ्यता ऋग्वैदिक सभ्यता के अन्तिम चरण से सम्बन्धित है। इन्हें नगरीकरण और विचारधारात्मक प्रक्रियाओं के रूप में अलग-अलग परिभाषित करना गलत है। वस्तुतः नगरीकरण विना विचारधारा के उदय के पूर्व समाज संगठित था। समाज जातीयावस्था से राज्य संस्थापक अवस्था में संक्रमित हुआ। इस सामाजिक एवं राजनीतिक विकास की निष्पत्ति अंततः एक नागर सभ्यता के रूप में हुई; जिसे हम विकसित सरस्वती-सिन्धु सभ्यता कहते हैं। इसके उषाकाल की झलक ऋग्वेद में स्पष्टतः प्रतिबिम्बित है।[1]

वैदिक एवं सरस्वती-सिन्धु सभ्यताएं अभिन्न हैं और सरस्वती-सिन्धु सभ्यता का देशज होना प्रमाणित है। अतः वैदिक सभ्यता और उसके निर्माता आयोजनों का देशज होना स्वतः सिद्ध है। यह अकेला तर्क 'आर्य आक्रमण' अथवा 'आर्य आगमन' जैसे सिद्धान्तों और उनके विविध संस्करणों को निरस्त करने के लिए पर्याप्त है। योरोपीय भाषाओं और संस्कृतियों में परिलक्षित समानताओं को 'आर्य आक्रमण/आगमन' नहीं अपितु 'आर्यबहिर्गमन' सिद्धान्त के आधार पर ही स्पष्ट किया जा सकता है।[2]

ऋग्वैदिक एवं सरस्वती-सिन्धु सभ्यताओं की अभिन्नता तीन प्रामाणिक आकलनों पर आधारित है। पहला यह कि दोनों का भौगोलिक क्षितिज एक ही हैं, दूसरा यह कि दोनों की कालाविधियां अंशतः आच्छादित हैंः और तीसरा यह कि दोनों की सांस्कृतिक संरचना में अद्‌भुत सादृश्य है।

भारतीय संस्कृति की मूल आत्मा सरस्वती है। उसे जानना और उसके विभिन्न काल खंडों में विभाजित स्वरूप का साक्षात्कार करना एक प्रकार से समग्र भारतीय चेतना का प्रत्यक्ष दर्शन है। जिसके दोनों तटों पर वैदिक साहित्य सृजित हुआ और कालान्तर में अनेक ऋषियों व देवताओं के तीर्थ, आवास, सरोवर स्थापित हुए, वे मानों सहस्रों वर्षों की जीवित सरस्वती प्रवाह को प्रकट करते हैं। अवगाहन करते हमारे पूर्वज अघाते नहीं थे। बाद के युगों में मूलतः नदी 'देवी सरस्वती' के रूप (मूर्तिरूप) में प्रकल्पित हुई और पूरी भारतीय मनीषा को उच्च स्थान पर प्रतिष्ठित करने में समर्थ हुई।

भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का मूल आधार पर चर्चा करने से पूर्व यहां पर स्पष्ट करना उचित होगा कि जिस सभ्यता के आर्य प्रणेता रहे, उस हड़प्पीय सभ्यता की वे इति कैसे करेंगे? जब सरस्वती सूखने लगी तो उस समय के लोग पश्चिम दिशा में सिन्धु तट के आस-पास पूर्व दिशा में गंगा-यमुना क्षेत्र और दक्षिण में गुजरात में, जहां जीवन यापन के लिए सहज रूप से जल उपलब्ध था, वहां पहुंच कर निवास करने लगे।

सिन्धु सभ्यता के समय जितना महत्त्व सिन्धु का रहा है, उतना ही सरस्वती का रहा है। सिन्धु सभ्यता को सरस्वती सभ्यता या संस्कृति का नाम दिया जाए, तो अनुचित नहीं होगा।

ऋग्वेद के छठे मण्डल के ६१वें सूक्त में सरस्वती की सबसे अधिक जानकारी उपलब्ध है। इनमें १४ मन्त्र हैं, जिसकी रचना ऋषि भरद्वाज बृहस्पति ने की है –

इयं शुष्मेभिर्बिसखाइवारूजत्सानु
गिरीणां तविषेभिरूर्मिभि ।
पारावतघ्नीमवसे सुवृक्तिभिः
सरस्वतीमा विवासेम धीतिभिः ।। ऋग्वेद ६.६१.२

'हे सरस्वती मां! आपका शक्तिशाली प्रवाह आपके पर्वतीय तटों को सहज रूप से ऐसे नष्ट कर रहा है, जैसे कमलनाल को उखाड़ा जाता है। हे माता! हम भक्तिपूर्वक आपकी सेवा में तत्पर हैं। आप हमारी रक्षा करें।'

लेकिन जटिल पहेली यह है कि ऋग्वैदिक आर्यों की संस्कृति भी इस सरस्वती के तट पर पल्लवित हुई है। यह कैसे हुआ? क्या सिन्धु सभ्यता और ऋग्वैदिक आर्य सरस्वती की घाटी में आबाद हुए थे। सरस्वती के तट पर वैदिक साहित्य का सृजन हुआ। सरस्वती की इस अतुलनीय देन के कारण इस प्रदेश को 'सारस्वत प्रदेश' भी कहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। महाभारत युद्ध के समय सरस्वती का प्रवाह कालीबंगा और अनूपगढ में एक था तथा बलराम ने उसकी तीर्थ यात्रा की थी।

यहां प्रख्यात पुरातत्त्ववेत्ता डॉ. बी.बी. लाल (१९९८) को उद्धृत करना उचित होगा, जैसे-जैसे हड़प्पीय नगर अदृश्य होने लगे, वहां के लोग अपनी परम्पराएं व कार्य करने की शैली लेकर सुरक्षित स्थानों पर पहुंचे। वे अपने साथ बैलगाड़ी, खेती करने की विधि और रोटी पकाने को तन्दूर ले गए। भारत में वर्तमान में महिलाओं के शृंगार के विविध आभूषण के प्रारूप आदि पूर्व की तरह ही लगते हैं। उसी प्रकार आज यहां शिव की पूजा हो रही है। अतः हड़प्पीय सभ्यता अकस्मात समाप्त नहीं हुई, परन्तु उसकी उपस्थिति भारतीय उपमहाद्वीप में निरन्तर बनी रही है।[३]

अतः यह कहना सार्थक होगा कि भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का उदय व उन्नयन सरस्वती की गोद में हुआ था। प्राकृतिक कारणों से सरस्वती के विलुप्त होने के साथ शनैःशनैः उसका विस्तार शेष भारत में हुआ।

हरियाणा प्रदेश का उज्ज्वल इतिहास अत्यन्त प्राचीन और गौरवपूर्ण है। भारतीय आर्य संस्कृति का उन्मेष स्थल ब्रह्मावर्त, इसी प्रदेश की देव नदियों सरस्वती और दृषद्वती के अन्तराल में स्थित है। मनुस्मृति में उल्लेख है –

सरस्वती दृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम् ।
तं देवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्तं प्रचक्षते ।।

ब्रह्मावर्त का ही दूसरा नाम कुरूक्षेत्र है। इसकी पहचान में महाभारत में कहा गया है –

दक्षिणेन सरस्वत्या दृषद्वत्युत्तरेण च ।
ये वसन्ति कुरूक्षेत्रे ते वसन्ति त्रिविष्टपे ।

जो सरस्वती के दक्षिण और दृषद्वती के उत्तर स्थित कुरूक्षेत्र में निवास करते हैं, वे स्वर्ग में रहते हैं। इन्हीं परम पावनी नदियों के तटों पर ऋग्वेद के युग में शक्तिशाली भरतों में विश्वमित्र और

वशिष्ठ के पौरोहित्य में अनेक यज्ञ किए।[४]

एक मान्यता के अनुसार पृथ्वी का प्रथम मानव का जन्म भारत में हिमालय के त्रिविष्टप प्रदेश में हुआ माना जाता है। नालन्दा शब्द सागर (आदिश बुक डिपो दिल्ली) में जो (जहां) त्रिविष्टप प्रदेश को आज का तिब्बत क्षेत्र दर्शाया जाता है, वहीं 'संस्कृत-हिन्दी कोश' (मोती लाल बनारसीदास पब्लिशर्स-प्रा.लि.दिल्ली) में त्रिविष्टप को इन्द्रलोक व स्वर्ग कहा गया है। वहां से मानव सर्वप्रथम भारत के विभिन्न भागों पर फैला। इसी समय मानव- संस्कृति भारत में विकसित हुई।[५]

धारणा है कि वैदिक सरस्वती के किनारे प्रथम मानव रामापिथिकस का जन्म हुआ और वही आगे चलकर सिनान्थ्रीपस, ऑस्ट्रेलोपिथिकस, होमोभीमपियन, होमोभीमबेटकीय के रूप में विकसित हुआ। सरस्वती क्षेत्र में जन्में मानव ने जागतिक मानवीय प्रगति का पथ प्रशस्त किया। उसी में वैदिक, परशु-भारतीय, सुमेर और यूरोपीय सभ्यताओं का विकासपथ भी प्रशस्त होता गया है।

मनु ने ठीक ही कहा है कि सरस्वती और दृषद्वती के बीच के 'देवनिर्मित देश' से ही पृथ्वी के सर्वमानवों ने अपना-अपना चरित्र सीखा है –

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः।। - मनुस्मृति

वैदिक सरस्वती नदी के तट पर ही मनु, कुरू, पांचाल, इक्ष्वाकु, चायमान, सवरण आदि राजाओं ने अपने नगरों, राज्यों तथा यज्ञ-परम्पराओं की वृद्धि की तथा सारस्वत सभ्यता को उन्नति-पथ पर अग्रसर किया। वैदिक काल में इस नदी का सर्वाधिक गतिशील, उर्वरा शक्ति की प्रेरिका, नदीतमा के रूप में हिमालय से निकलकर 'आसमुद्रात' बहने का उल्लेख है।

हवाई सर्वेक्षण एवं सैटेलाईट से प्राप्त जानकारी के अनुसार इसका फैलाव ८ किलोमीटर का रहा होगा। किन्तु ब्राह्मणग्रन्थों एवं परवर्ती श्रौत-सूत्रो के उल्लेखों से पता चलता है कि इनके समय में सरस्वती का प्रवाह लुप्त हो रहा था और यह समुद्र तक न जाकर राजस्थान में किसी स्थान पर समाप्त हो गई जान पड़ती थी, जिसे 'विनशन नाम से सम्बोधित किया गया।'

आद्यवैदिक अर्थात् हड़प्पा पूर्व काल से इसके तट पर नागरीय सभ्यता का विकास प्रारम्भ हुआ तथा पूर्ण विकसित हड़प्पीय काल (Mature Harappan) में इसके तट पर स्रुध्न युगंधर, पृथुदक, अग्रोदक, शैरीक्षिक, कालीबंगा, रंगमहल और बनावली आदि विशालनगर प्रतिष्ठापित हुए। अधिकतर पाश्चात्य विद्वानों तथा उनके अन्धानुयायी कुछ भारतीय विद्वानों ने इनमें से अधिकांश नगरों को मुअन-जोदड़ो, हड़प्पा, कालीबंगा, सोठी, मिताथल सुरकोटड़ा, लोथल, माहिष्मती एवं कपित्थ आदि पुरा-स्थलों को तथाकथित सिन्धु घाटी की सभ्यता से जोड़ा है और इसे वैदिक सभ्यता से भिन्न बतलाया है। परन्तु स्वर्गीय डॉ. पदमश्री विष्णु श्रीधर वाकणकर ने हड़प्पीय सभ्यता का नामकरण 'सारस्वत सभ्यता' किया है; क्योंकि मूलतः इसका विकास सरस्वती-क्षेत्र में हुआ।[६]

वस्तुतः सिन्धु स्थलों के उत्खननों से प्राप्त अनेक पुरावस्तु वैदिक कर्मकाण्ड से सम्बन्धित हैं, पात्रों पर रुद्र के चित्र, वैदिक देवी सिनीवाली की मृतिका-प्रतिमा, इस देवी की शान्ति के लिए प्रयुक्त शत छिद्र कृभियां, यज्ञ कुण्ड, यज्ञ कुण्डों में अर्पित वैदिक पद्धति की मृतिका-मुष्टियां आदि अनेक आन्तरिक और बाह्य प्रमाण बतलाते हैं कि इस सभ्यता का वैदिक सभ्यता से गहरा सम्बन्ध था। वैदिक—कालगणना के अनुसार इस सभ्यता को हम वेदोत्तर उपनिषद् काल से सम्बन्ध कर सकते हैं।

हड़प्पीय अथवा प्राक्-हड़प्पीय स्थानों की संस्थिति भी सिन्धु की अपेक्षा सरस्वती नदी के तट पर ही अधिक है। सरस्वती नदी के तट पर ऐसे एक सौ से अधिक स्थान मिले हैं जिनमें हड़प्पीय सभ्यता से सम्बन्धित अवशेष प्राप्त हुए हैं। अब तो हड़प्पा से भी पहले की सभ्यता के अवशेष मिल गए हैं जिसे प्राक्-हड़प्पीय या सोठी सभ्यता का नाम दिया गया है।[७]

डॉ. गाई पिलग्रिम ने चण्डीगढ़, पिंजौर के आसपास से मिली एक खोपड़ी का वैज्ञानिक अध्ययन करने के पश्चात यहां लगभग डेढ़ करोड़ वर्ष पूर्व मानव के बसने की बात कही थी। डॉ. एस.के.क्यू. कुरेशी ने बाद में डॉ. पिलग्रिम की तिथि को और भी पीछे धकेल दिया। विश्वास है कि लगभग तीन करोड़ वर्ष पूर्व यहां मानव बस्तियां बसनी आरंभ हो गई थी।

जिला अम्बाला का गजेटियर (सन् १९८३-८४) में सरस्वती नदी को सिरमौर-नाहन की शिवालिक पहाड़ियों से अवतरित होने वाली, आदिबद्री प्राचीन देवालय के समीप प्रवाहित नदी, का कुरुक्षेत्र तक पहुंचने का मार्ग दृश्यादृश्य गतिप्रवाह के रूप में उल्लेख किया है। यह नदी वह सरस्वती है, जो ब्राह्मणकालीन भारतीय इतिहास में प्रसिद्ध है।

जिला अम्बाला के राजस्व रिकॉर्ड के पुराने मानचित्रों में भारत की ब्रह्मनदी सरस्वती का प्रवाहित मार्ग-स्थान आज भी स्पष्ट मिलता है। इतना ही नहीं सरस्वती पर जहां भी कोई सड़क का पुल या रेलवे ब्रीज (पुल) बनाया गया है, साफ शब्दों में सरस्वती नदी का नामोल्लेख किया मिलता है। जिला अम्बाला की तत्कालीन तहसील जगाधरी के व्यासपुर (बिलासपुर) कस्बे में हाल ही में बनाया गया, चण्डीगढ़ वाली सड़क का सरस्वती नदी का पुल इसका साक्षी है। उत्तर भारत की अम्बाला-सहारनपुर रेलवे लाईन पर मुस्तफाबाद स्टेशन के निकट का रेलवे पुल 'सरस्वती पुल' नाम से आज भी जाना जाता है।

ऋग्वैदिक सरस्वती नदी की पुनर्खोज से वैदिक इतिहास, पुरातत्व और संस्कृति के क्षेत्र में एक नये युग का सूत्रपात हुआ है। वैदिक संस्कृति के सम्बन्ध में हमारा सारा ज्ञान अभी तक लगभग पूर्णतः साहित्य पर आधारित रहा है। किन्तु अब यह स्पष्ट हो चुका है कि सरस्वती सिन्धु सभ्यता वैदिक संस्कृति के ही परवर्ती ऋग्वैदिक नागरावस्था की अभिव्यक्ति है। अतः अब सरस्वती सिन्धु सभ्यता की विपुल पुरातात्विक सामग्री का उपयोग वैदिक संस्कृति के अध्ययन, विशेषतः उसके भौतिक सांस्कृतिक पक्ष के उद्घाटन के लिए किया जा सकता है। वैदिक संस्कृति के सातत्य के

प्रकाशन में भी इस पुरातात्विक सामग्री से अत्यधिक सहायता प्राप्त हो सकती है।

इस दिशा में बी.बी. लाल ने पहल भी कर दी है। विगत वर्ष २००२ में प्रकाशित अपनी नवीनतम कृति का उन्होंने अत्यन्त उपयुक्त नामकरण 'द सरस्वती फ्लोज ऑन' (सरस्वती प्रवाहित है) किया है। इस महत्त्वपूर्ण प्रलेख में उन्होंने सप्रमाण यह दिखाया है कि हमारी अनेक सामाजिक-धार्मिक प्रथाएं अत्यन्त प्राचीन काल से अब तक अविछिन्न रूप से विद्यमान है। इस सम्बन्ध में उन्होंने योगासनों की प्रथा, हाथों को जोड़कर (करबद्ध) प्रणाम करने की प्रथा आदि कई प्रथाओं का प्रमाण प्रस्तुत किया है, जो सरस्वती-सिन्धु (अर्थात् परवर्ती ऋग्वैदिक) सभ्यता में प्रचलित थी और आज भी प्रचलित हैं।

हमारे लिए यह एक महान गौरव का विषय है कि ऋग्वेदकालीन सरस्वती-सिन्धु सभ्यता की विशेषताएं आज भी भारत में लगभग ज्यों की त्यों विद्यमान हैं। नगर-परिकल्पना, कृषि एवं भाषा, यज्ञ एवं यज्ञकुण्ड, यज्ञ-पात्र, पीपल एवं शमी वृक्ष का पूजन, पशुपतिनाथ और मातृ देवता, नन्दी, पुजारी, आभूषण, नर्तकी इत्यादि के रूप में इस सभ्यता के जो प्रतीक प्राप्त हुए हैं, उनकी हमारे आज के समाज में विद्यमान वस्तुओं से हो रही आश्चर्यजनक समानता हमें हर्ष-विह्वल कर रही है। हमारी आज की संस्कृति प्राचीन ऋग्वैदिक सरस्वती संस्कृति के साथ समरूप दिख रही है, वे परस्पर आत्मरूप हैं।

कलियुगाब्द– ५०८७ (ई. सन् १६८५) में पद्मश्री विष्णु श्रीधर वाकणकर के नेतृत्व में सरस्वती शोध अभियान के समय जो तथ्य सामने आए, वे ज्ञानवर्धन-मार्गदर्शन के लिए बहुत उपयोगी है। प्राचीन भारतीय वाङ्मय में सरस्वती नदी के सम्बन्ध में निम्नलिखित मान्यताएं प्राप्त होती हैं –

१. पञ्ध्धा सरस्वती (पूर्व वेदकालीन प्रवाह)
   (वाजसंहिता–३८/११, वामनपुराण १३/२०)
२. सप्तस्वशा सरस्वती (ऋग्वेदकालीन)
   (ऋग्वेद १.३३.१२, १०.७६.५)
३. अन्तःसलीला सरस्वती (लोकमान्यता)
   (एरिड़ जोन जोधपुर द्वारा सरस्वती के पूर्व प्रवाह मार्गों पर अथाह जल स्रोतों की खोज)
४. सरस्वती के उद्भेद – १. नागोद्भेद (पुष्कर) २. शिवोदभेद (कोटेश्वर अम्बाजी) ३. चमंसोद भेद
   (महाभारत में बलराम-सरस्वती यात्रा प्रकरण, प्रहलाद का सरस्वती यात्रा प्रकरण-वामन पुराण)
५. इसका पात्र (पाट) इतना विशाल था कि यह क्षितिज तक फैली थी;
   अर्थात् आंखों से इसका किनारा देख पाना असम्भव था।

ऋग्वेद में यद्यपि सरस्वती के सूखने का कोई स्पष्ट उल्लेख प्राप्त नहीं होता, परन्तु इन्द्र-वृत्रासुर युद्ध, दासराज युद्ध, विरोचन-इन्द्र युद्ध, शम्बर-दिवोदास् युद्ध इस बात का संकेत करते हैं

कि उस समय जल संकट के कारण आपस में संघर्ष था और परशुराम काल तक आते-आते यह क्षत्रियों के सर्वनाश का कारण बना।[८]

सर्वेक्षण के मध्य सरस्वती के विभिन्न प्रवाहों का अध्ययन करने के समय यह बात स्पष्ट रूप से सामने आयी कि सरस्वती नदी का लोप सैकड़ों वर्षों में नहीं हुआ, अपितु हजारों-लाखों वर्षों में हुआ होगा; अपितु हजारों लाखों वर्षों में हुआ जिसके कारण निम्नलिखित रहे होंगे – १. अत्यधिक भंयकर बाढ़ एवं प्रवाह मार्ग का परिवर्तन, २. पर्यावरण असन्तुलन, ३. भूकम्पनी, भूगर्भीय एवं ज्वालामुखीय परिवर्तन, ४. तटवर्ती निवासियों के धाराप्रवाह बदलने एवं रोकने के प्रयत्न ५. अतिवृष्टि-अनावृष्टि एवं रेतीले तूफान, ६. समुद्री तूफान एवं नदी प्रवाह का पटना। उपरोक्त के अतिरिक्त सरस्वती के विलुप्त होने के कारणों में अन्य तीन प्रमुख कारण भी हैं – उसके हिमजल का अवरूद्ध होना। उसकी दो प्रमुख सहयोगिनी दृषद्वती और शतुद्रि का विछोह, शिवालिक पाद क्षेत्र में वर्षा का अभाव।[९]

इन कारणों के साथ - साथ कुछ विद्वान साल्ट रौकी एरिया के कारण सरस्वती का पृथ्वी में लुप्त होना मानते हैं। आज भी थोड़ी अधिक वर्षा होने पर सरस्वती नदी के सभी प्रवाह मार्ग प्रवाहमान हो उठते हैं। ऐरिड जोन अन्तःसलिला सरस्वती नदी की मान्यता के आधार पर सरस्वती के पूर्व पैलियो चैनलस् पर ट्यूबवैल (नल-कूप) लगाकर राजस्थान के रेगिस्तान क्षेत्र में अथाह पानी मिल रहा है। जिनके कारण अब वहां का कृषक खेती व बागवानी करने लगा है। अन्ततः सरस्वती आज भी रेगिस्तान की जीवन प्रदान करने वाली शक्ति और साधन बन गई है।

अमेरिका की अन्तराल एजेंसी (नासा) के पश्चात भारतीय अन्तरिक्ष अनुसंधान संगठन (ISRO) के जोधपुर स्थित क्षेत्रीय सुदूर संवेदनशील सेवा केन्द्र का अनूठा योगदान रहा है। उन्होंने प्रथम-भू उपग्रह छाया चित्रों की सहायता से सरस्वती के शुष्क प्रवाह मार्ग का अनुसंधान किया और भू-उपग्रह छाया-चित्रों का विश्लेषण करके सरस्वती के प्रवाह मार्ग का प्रारम्भ से अन्त तक का नक्शा (मानचित्र) तैयार कर समस्त विश्व के समक्ष प्रस्तुत किया। उसके आधार पर पश्चिमी राजस्थान में सरस्वती रूपा नहर योजना के कारण पीने के लिए एवं कृषि के लिए प्रभूत मात्रा में भू-जल सुलभता से मिलने लग गया है।

पुरातात्विक सर्वेक्षण एवं उत्खनन के साथ ही अन्तरिक्ष उपग्रह द्वारा लिये गये छाया-चित्रों के माध्यम से सरस्वती नदी के पुराने प्रवाह मार्ग का अब पता लग गया है। इस कारण वैदिक सरस्वती नदी एक निरी पुराण कल्पना मात्र नहीं रही, अपितु उसे एक भौगोलिक सत्य के रूप में स्वीकार किया गया है।

इस नदी की पहचान आज वादातीत है। वैज्ञानिकों ने इस नदी के प्रवाह मार्गों में ऐसे अनेक स्थान निश्चित किये हैं कि जहां-कूप-नलिकाएं खोदकर अन्त-सलिला सरस्वती नदी का अथाह जल भूपृष्ठ पर लाना सुलभ हो गया है। इन निर्धारित स्थलों पर जहां-जहां कूप-नलिकाएं खोदी गई,

वहां-वहां मीठे पानी के प्रवाह छलक आए हैं।

ऋग्वैदिक नदी सरस्वती की वर्तमान खोज से भारतीय इतिहास को सही परिप्रेक्ष्य में समझने का आधार प्राप्त हुआ हैं। इसमें अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना की अग्रणी भूमिका है। स्वर्गीय डॉ. विष्णु श्रीधर वाकरणकर के नेतृत्व में योजना के 'वैदिक सरस्वती शोध अभियान दल' ने न केवल इस नदी से सम्बन्धित प्रचुर साहित्यिक एवं पुरातात्विक स्रोत सामग्री का संकलन किया, अपितु इसके अवतरण-स्थल शिवालिक पहाड़ियों की तराई में आदिबद्री से इसके सागर संगम क्षेत्र गुजरात के प्रभास पाटन (सोमनाथ) तक एक यात्रा कर इसके सूखे जलमार्गों का भौतिक सर्वेक्षण तथा किनारों पर स्थित प्राचीन स्थलों का गहरा स्थलीय अध्ययन भी किया।

सरस्वती के इस आधुनिक अन्वेषण के क्रम में जो तथ्य प्रकाश में आये हैं, इनमें से कई ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। उदाहरणार्थ, यह तथ्य कि यह नदी ईस्वी पूर्व १९०० तक लगभग जलहीन हो चुकी थी, एक निर्णायक तथ्य है। इससे यह सुनिश्चित हो जाता है कि ऋग्वेद जो सरस्वती को पर्वत से समुद्र तक घोर गर्जना करते हुए बहने वाली तथा 'वेगवती नदियों में सर्वाधिक वेगवान' नदी के रूप में चित्रित करता है और जिसमें इस नदी के सूखने या इसमें जल की कमी का कहीं कोई संकेत तक नहीं है, ई.पू. १९०० के बहुत पहले ही रचा जा चुका था। इस तथ्य ने पूर्व प्रचलित उस धारणा को निर्मूल सिद्ध कर दिया है, जिसमें ऋग्वैदिक काल को हड़प्पा युग का परवर्ती माना जाता था। रामविलास शर्मा (१९९४) का यह कथन शत-प्रतिशत सच है कि – 'सरस्वती भारत के प्राचीन इतिहास की काल विभाजक रेखा है। आर्य आक्रमण सिद्धान्तवादियों के लिए उसे लांघ पाना सम्भव नहीं है।[१०]

यह ध्यान देने की बात है कि उत्तर वैदिक एवं वैदिकोत्तर साहित्य में कहीं भी सरस्वती नदी के सूख जाने का उल्लेख नहीं है। सर्वत्र उसके अदृश्य या लुप्त हो जाने (विनशन) की बात कही गई है। अब वह दिन दूर नहीं जब लुप्त सरस्वती नदी पुनः प्रकट होकर अपने तटवर्ती आंचलों को हरा-भरा बनाती और समूचे देश की गरिमा प्रदान करती दृष्टिगोचर होगी।

जिस क्षेत्र में भू-जल स्तर ८५ फुट तक गिर गया हो, वहां केवल ८-९ फुट पर ही जलधारा बह निकली। जरा सर गहराई पर पानी के स्रोत का मिलना, उस 'भगीरथ प्रयास' का परिणाम है, जिसके अधीन लुप्त हो चुकी सरस्वती नदी को तलाशा जा रहा है। कई दिनों से सरस्वती नदी के उद्गम स्थल माने जाने वाले आदिबद्री क्षेत्र में बिलासपुर (हरियाणा) स्थित गांव मुगलवासी के पास चल रही खुदाई में ५ मई, २०१५ को अचानक जलधारा फूट पड़ी। मात्र ७-८ फुट की गहराई पर ही प्रचुर मात्रा में पानी फूट पड़ा। यमुनानगर प्रशासन के अनुसार नदी की यमुनानगर में ५५ कि.मी. लम्बाई होगी तथा यह ४३ गांवों से होकर कुरुक्षेत्र जिला में प्रवेश करेगी। इस अभियान के लिए आज की हरियाणा सरकार ने ५० करोड़ रूपये जारी किये हैं।

खुदाई कार्यक्रम का शुभारम्भ आदिबद्री क्षेत्र से ५ कि.मी. दूरी पर स्थित गांव रूलाहेड़ी से किया गया था। कहा जाता है कि भविष्य में यहां यह बड़ा जलाशय बनाया जायेगा और पहाड़ों पर होने वाले वर्षा और सोमनदी के पानी को एकत्रित करके सरस्वती नदी को नदी के रूप में प्रवाहित किया जायेगा।

सरस्वती के मिलने पर जो उत्सव आजकल मनाया जा रहा है, वास्तव में यह ८८ वर्षीय वृद्ध एवं सरस्वती नदी शोध संस्थान के संस्थापक श्री दर्शनलाल जैन के परिश्रम का प्रतिफल है। उन्होंने सरस्वती नदी के लिए वर्ष १९९९ में इस संस्थान की स्थापना की और तब से अनवरत संघर्ष कर रहे हैं। यह प्रक्रिया पूरी तरह वैज्ञानिक है। सैटेलाईट के माध्यम से नदी का रूट (मार्ग) बनाया गया और फिर खुदाई शुरू की गई। पूरी टीम को सफलता मिली। पानी बहुत साफ, मीठा और स्वादिष्ट है। अब यह भी शोध का विषय बन गया है कि क्या सरस्वती की धारा ऊपर उठ रही है।

सरस्वती नदी की खोज के लिए प्रेरणा देने वाले मातृभूमि के एक भक्त मा. मोरोपन्त जी पिंगले तथा उन्हीं संस्कारों में पले-बढ़े-पढ़े, मातृभूमि भक्त कर्मयोगी-अन्वेषक हरिभाऊ विष्णु श्रीधर वाकरणकर तथा राष्ट्रप्रेमी अन्य कई लोग, इन सबने मिलकर सरस्वती नदी की खोज-यात्रा की, रूपरेखा बनाकर, उसे क्रियान्वित भी कर दिखाया।

भारतीय पुरातत्व के इतिहास में बीसवीं शताब्दी अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण रही। इसी शताब्दी के पूर्वार्ध में मोहनजोदड़ो एवं हड़प्पा की खोज हुई। शताब्दी के मध्य में भीमबेटका की खोज हुई। बीसवीं शताब्दी की इन खोजों ने विश्व का इतिहास ही बदल दिया है। भारत माता का उभरता पूर्व वैभव देखकर विश्व आज चकित एवं अचंभित है।

जब तक 'अम्बितमे नदीतमे देवीतमे' सरस्वती का अनवरत प्रवाह हमारे अंतकरण में चलता रहेगा, भारतीय संस्कृति का प्रवाह इस धरती पर बना रहेगा और भारत उससे अमरत्व प्राप्त कर शाश्वत बना रहेगा।

सन्दर्भ :

१. शिवाजी सिंह, ऋग्वैदिक आर्य और सरस्वती-सिन्धु सभ्यता,
भारतीय इतिहास संकलन समिति, वाराणसी, वर्ष-२००४, आवरण पृष्ठ १

२. वही, आवरण पृष्ठ १

३. देवेन्द्र सिंह चौहान, पुण्यसलिला-सरस्वती नदी,
बाबा साहेब आप्टे स्मारक समिति, बंगलोर, वर्ष २००४, पृष्ठ १३९-१४०

४. युयुत्सु रामशरण, हरियाणा की लोक परम्प्रा में सृष्टि रचना विचार,
श्री अंगिरा शोध संस्थान, जीन्द पृष्ठ-१६

५. वही, पृष्ठ ५

६. वैदिक सरस्वती नदी शोध अभियान : एक परिचय, युग-युगीन कुरुक्षेत्र,
इतिहास संकलन समिति हरियाणा, कुरुक्षेत्र, पृष्ठ - १६०

७. वही, पृष्ठ १६०
८. वही, पृष्ठ १६०
९. विश्वबन्धु शशीन्द्र, वैदिक सरस्वती नदी लुप्त होने के कारण, इतिहास दर्पण (शोध पत्रिका), सरस्वती नदी विशेषांक, अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना, दिल्ली
१०. शिवाजी सिंह, ऋग्वैदिक आर्य और सरस्वती-सिन्धु सभ्यता, भारतीय इतिहास संकलन समिति, वाराणसी, वर्ष- २००४, पृष्ठ - आमुख ३

श्री अंगिरा शोध संस्थान
३६०/५, शान्ति नगर, पटियाला चौक, जीन्द
हरियाणा- १२६१०२

वैदिक अर्थ व्यवस्था में कृषि

पद्मश्री डॉ. कपिलदेव द्विवेदी

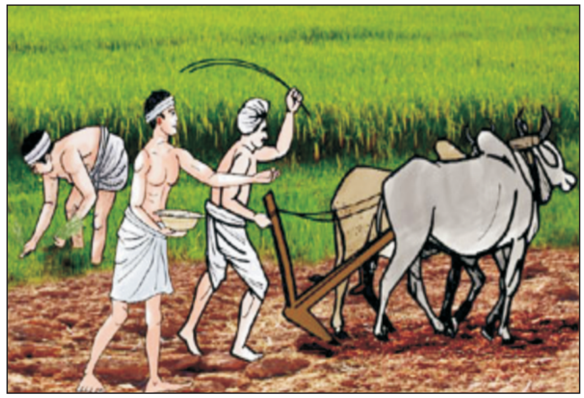

वैदिक अर्थ-व्यवस्था का प्रमुख आधार कृषि था। कृषि से उत्पन्न अन्न आजीविका का मुख्य साधन था। अतएव वैदिककाल में कृषि की गुणवत्ता पर विशेष ध्यान दिया गया था। मानवमात्र का जीवन अन्न पर निर्भर है। अन्नों की प्राप्ति का प्रमुख साधन कृषि है, अतः कृषि समस्त मानवों के जीवन का आधार है। सृष्टि की उत्पत्ति के साथ ही अन्न की समस्या उत्पन्न हुई। इसके निवारण के लिए कृषि-विद्या का आविष्कार हुआ। ऋग्वेद और अथर्ववेद से ज्ञात होता है कि कवि (मेधावी, दूरदर्शी) और धीर (विद्वान) मनुष्य कृषि-कार्य को अपनाते थे।[१] कृषि गौरव का कार्य था। अतः इन्द्र तथा पूषा (पूषन्) देवों को इसमें लगाया गया था।[२] अश्विनी देवों द्वारा भी जौ की खेती करने का वर्णन ऋग्वेद में प्राप्त होता है।[३] कृषि-विद्या में सफल व्यक्तियों को **कृष्टराधि** कहते थे और उन्हें उपजीवनीय अर्थात् सफल निर्देशक या परामर्शदाता माना जाता था।[४] अथर्ववेद के एक मन्त्र में कृषि-विशेषज्ञों को **अन्नविद्** नाम देते हुए कहा गया है कि सर्वप्रथम उन्होंने ही कृषि के नियम (याम) बनाये थे।[५] इस मन्त्र में कृषक के लिए **कार्षीवण** शब्द दिया गया है।

अथर्ववेद का कथन है कि मानव जीवन की प्रमुख समस्या अन्न है।[६] कृषि और अन्न मनुष्यों पर जीवन निर्भर है।[७] अतः इस समस्या का हल करने के लिए कृषि की उपज बढ़ाना, उसके सहायक तत्त्वों बीज आदि की उन्नत किस्म तैयार करना आवश्यक है।

यजुर्वेद में राजा के चार प्रमुख कर्तव्य बताये गए हैं। उनमें भी कृषि को उन्नत करना प्रथम कर्तव्य बताया गया है। राजा के चार कर्तव्य ये हैं : १. कृषि को उन्नत करना, २. जल-कल्याण करना, ३. अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ करना, ४. जनता को सुख-सुविधा प्रदान कर पुष्ट बनाना।[८]

शतपथ ब्राह्मण में पूरे कृषि कार्य का चार शब्दों में वर्णन किया गया है : **१. कर्षण :** खेत की जुताई और सफाई करना। **२. वपन :** बीज बोना। **३. लवन :** पके खेत की कटाई करना। **४. मर्दन :** मड़ाई करके स्वच्छ अन्न प्राप्त करना।[९]

कृषि का प्रारम्भ : पृथ्वी पर कृषि-विद्या का किस प्रकार विकास हुआ, इस विषय में एक रोचक प्रसंग ऋग्वेद में प्राप्त होता है। ऋग्वेद के एक मन्त्र में कहा गया है कि सर्वप्रथम देवगण (पुरुषार्थी विद्वान्) आगे आए। उनके पास अपनी-अपनी कुल्हाड़ियां (परशु) थीं। उन्होंने जंगलों को काटकर साफ किया। उनके साथ उनके कुछ सहयोगी परिजन या इष्ट-मित्र (विश्) भी थे। उन्होंने उपयोगी लकड़ियों (बल्लियों आदि, सुद्रु) को नदियों के किनारे रख दिया और जहां-कहीं घास-फूंस (कृपीट) थी, उसे जला दिया।[१०] इससे ज्ञात होता है कि प्राचीन काल में जंगलों की अधिकता थी। जंगलों को काटकर साफ किया गया, भूमि को समतल किया गया और फिर उसमें कृषि का कार्य प्रारम्भ किया गया। आज भी इसके उदाहरण मारीशस आदि द्वीपों में विद्यमान हैं, जहां कंकड़-पत्थरों के टीले खेतों के समीप विद्यमान हैं। मारीशस में कृषि-कार्य प्रारम्भ करने का श्रेय भारत-मूल के निवासियों को ही है।

राजा पृथी (पृथु) कृषि का आविष्कारक : ऋग्वेद और अथर्ववेद से ज्ञात होता है कि राजा वेन का पुत्र राजा पृथी (पृथु) कृषि-विद्या का प्रथम आविष्कारक था। उसने ही सर्वप्रथम कृषिविद्या के द्वारा नाना प्रकार के अन्नों के उत्पादन का रहस्य ज्ञात किया।

ऋग्वेद में वेन के पुत्र राजा पृथी (पृथी वैन्य) का केवल उल्लेख है।[११] ऋग्वेद में ही 'पृथि' नाम का भी उल्लेख है।[१२] अथर्ववेद में स्पष्ट रूप से पृथी वैन्य को कृषि- विद्या का आविषकारक बताया गया है। अथर्ववेद का कथन है कि – मनु वैवस्वत की वंश परम्परा में वेन का पुत्र पृथी राजा हुआ। उसने कृषि की और अन्न उत्पन्न किए।[१३]

शतपथ ब्राह्मण में वेन के पुत्र का नाम पृथु देते हुए कहा गया है कि संसार में पृथु ही पहला व्यक्ति था, जिसका सर्वप्रथम राज्याभिषेक हुआ था।[१४] जैमिनीय ब्राह्मण और जैमनीय उपनिषद् में पृथु नाम ही दिया गया है।[१५] इसके आधार पर ही भूमि का नाम 'पृथ्वी' पड़ा। तांड्य ब्राह्मण में राजा पृथु को महाप्रतापी राजा बताते हुए कहा गया है कि उसका मनुष्यों और पशुओं पर पूर्ण आधिपत्य था।[१६] परकालीन साहित्य में राजा पृथी के स्थान पर पृथु नाम ही प्रचलित हुआ है।

सर्वप्रथम कृषिकर्ता इन्द्र और मरुत् : अथर्ववेद का कथन है कि सरस्वती नदी के किनारे की भूमि बहुत उपजाऊ थी। इसमें माधुर्यगुण-युक्त जौ की खेती की गई। इसमें इन्द्र कृषिकर्म के अधिष्ठाता थे और मरुत् देवों ने किसान का काम किया।[१७] इसका अभिप्राय यह है कि सरस्वती नदी के किनारे की भूमि को अत्यन्त उपजाऊ देखकर कृषिकार्य के लिए सर्वप्रथम उसे चुना गया। कृषिकार्य की प्रेरणा इन्द्र या राजा ने दी, अतः उसे क्षेत्रपति या अधिष्ठाता कहा गया है। उसके नियन्त्रण में ही प्रजाजनों (मरुत्) ने जौ की खेती की। इससे ज्ञात होता है कि सबसे पहले जौ की खेती हुई।

यहां उल्लेखनीय है कि वेदों में **यवं कृष्** का प्रयोग मिलता है और उधर ईरानी भाषा अवेस्ता में सामानान्तर **यवो करेश** का प्रयोग मिलता है और **सस्य** (अन्न) के लिए **हह्य** प्रयोग हुआ है। अवेस्ता में स को ह हो जाता है, अतः सस्य हह्य बन गया है, जैसे सिन्धु का हिन्दू। इससे सिद्ध होता है कि इस

भूमि पर सबसे पहले जौ की ही खेती हुई थी। गेहूं आदि की खेती बाद में प्रारम्भ हुई है।

महाभारत और पुराणों में कृषि : महाभारत में राजा का नाम पृथी के स्थान पर पृथु दिया गया है। महाभारत का कथन है कि वेन का पुत्र राजा पृथु एक प्रतापी राजा था। उसने ऊंची-नीची भूमि को समतल बनाया। विषम भूमि से कंकड़-पत्थरों को निकाला और उन्हें अलग रखवाया। इस समतल की हुई भूमि पर कृषि की और 17 प्रकार के अन्न उत्पन्न किए।[१८]

भागवत पुराण में भी राजा पृथु के इस महत्वपूर्ण कार्य का बहुत विस्तार से वर्णन है कि उन्होंने पथरीली भूमि को समतल बनाया और उसे जोतकर कृषि की।[१९]

भू-स्वामित्व : वेदों में भू-स्वामित्व के विषय में बहुत स्पष्ट निर्देश नहीं हैं। जो वर्णन प्राप्त होते हैं, उनसे ज्ञात होता है कि खेतों को नाप कर अलग-अलग दिया जाता था। ऋग्वेद का कथन है कि तेजन (फीता, रस्सी, सरकंडे की छड़ी या मापदंड) से खेत को नापा जाता था।[२०] इससे ज्ञात होता है कि फीता आदि से खेतों को नापा जाता था और उनके अलग-अलग हिस्से किए जाते थे। ऋग्वेद के एक मन्त्र में वर्णन है कि अपाला ने अपने पिता की बंजर (ऊसर) भूमि को उपजाऊ बनाने के लिए इन्द्र से प्रार्थना की थी।[२१] इससे ज्ञात होता है कि व्यक्तियों की कुछ निजी भूमि होती थी। इस आधार पर कहा जा सकता है कि यह भू-स्वामित्व कुटुम्ब या परिवार का होता था। क्षेत्रों को नापकर पृथक् किया जाता था और उनपर विभिन्न परिवारों का स्वामित्व होता था। राजा उनसे लगान या कर वसूल करता था। कर के लिए 'बलि' शब्द था। करदाता को ऐतरेय ब्राह्मण में 'बलिकृत' कहा गया है।[२२] ऋग्वेद और अथर्ववेद में भी राजा को कर देने का उल्लेख है। करदाता को बलिहृत् कहा गया है।[२३] भू-स्वामित्व की क्या सीमा थी, एक परिवार अधिक से अधिक कितनी भूमि रख सकता था, उसका रिकार्ड कौन रखता था, आदि का वर्णन वेदों में नहीं है। कौटिलीय अर्थशास्त्र में इसका विशद विवेचन मिलता है।

अथर्ववेद में 'क्षेत्रस्य पतये' खेत का स्वामी कहा है[२४] और यजुर्वेद में 'क्षेत्राणां' पतये खेतों का स्वामी कहा गया है।[२५] इससे ज्ञात होता है कि कुछ लोगों के पास एक खेत ही कृषि के लिए होता था और कुछ के पास अनेक खेत कृषि-हेतु होते थे। ये उसके स्वामी होते थे। अथर्ववेद के एक मन्त्र में 'क्षेत्रस्य' पत्नी अर्थात् खेत की स्वामिनी का भी उल्लेख है।[२६] इससे ज्ञात होता है कि स्त्री भी खेत की स्वामिनी हो सकती थी। एक मन्त्र में शंभु अर्थात् परमात्मा को क्षेत्रपति कहा है।[२७] अथर्ववेद के एक मन्त्र में इन्द्र या राजा को 'सीरपति' हल या खेत का स्वामी बताते हुए मरुतों को किसान (कीनाश) बताया गया है।[२८] इससे ज्ञात होता है कि खेत का स्वामित्व राजा के पास होता था और किसानों को उनका पारिश्रामिक मिलता था। उपर्युक्त विवेचन से ज्ञात होता है कि कुछ सरकारी भूमि होती थी। उनका स्वामित्व राजा के पास होता था और किसानों को उनका पारिश्रामिक दिया जाता था। कुछ भूमि पर व्यक्तियों का अधिकार होता था। उनके पास एक या अनेक खेत होते थे। इस भूमि के संरक्षण आदि का भार व्यक्तियों पर होता था। वे राजा को लगान के रूप में कर देते थे।

ऋग्वेद के एक मन्त्र में कृषि-विशेषज्ञ को 'क्षेत्रवित्' कहा गया है। वह खेतों की नाप, नाली बनाने का ढंग तथा बीज के गुण आदि का विशेषज्ञ होता था। मन्त्र में कहा गया है कि 'अक्षेत्रवित्'

(सामान्य कृषक) उस क्षेत्रवित् से पूछता है और उसके आदेशानुसार काम करता है। इस अनुशासन का लाभ यह होता था कि खेतों के ठीक विभाजन से सिंचाई हेतु नालियों के प्रवाह की ठीक व्यवस्था हो जाती थी।[२९] मैत्रायणी संहिता में स्पष्ट उल्लेख है कि भूमि-सम्बन्धी विवाद होते थे और राजा उन पर अपना निर्णय देता था। एतदर्थ ही भागधेय (टैक्स, लगान) आदि लिया जाता था।[३०] अतएव राजा को क्षेत्रंजयः (क्षेत्र-स्वामी) कहा गया है। ऋग्वेद और अथर्ववेद में भी उल्लेख है कि क्षेत्र-सम्बन्धी एक विवाद में इन्द्र (राजा) ने त्रसदस्यु और पुरु का पक्ष लेकर उनको बचाया था।[३१] इससे ज्ञात होता है कि खेतों के विवाद में राजा का निर्णय ही सर्वमान्य होता था।

भूमि के भेद : ऋग्वेद, यजुर्वेद, तैत्तिरीय संहिता और अथर्ववेद में भूमि के तीन भेदों का उल्लेख मिलता है।[३२] ये हैं : **१. उर्वरा :** उपजाऊ। उर्वरा के लिए अप्नस्वती शब्द भी है। खुदाई-जुताई आदि के बाद तैयार भूमि के लिए अप्नस्वती शब्द है। **२. इरिण :** ऊसर, क्षार मिट्टी वाला क्षेत्र। ऊसर के लिए ऊषर और आर्तना शब्द भी हैं। **३. शष्प्य :** चरागाह के योग्य भूमि।

उर्वरा भूमि से उत्पन्न अन्न के लिए उर्वर्य शब्द है। जिस भूमि में अन्न नहीं बोते हैं उसे खल कहते हैं। यह बिना जुती हुई भूमि खलिहान का काम करती है। इसमें कृषि से उत्पन्न अन्न को साफ किया जाता है और भूसी आदि हटाकर भंडारण के योग्य बनाया जाता है। खलिहान में रखे अन्न के लिए खल्य शब्द है।[३४]

खलिहान में रखे हुए अन्न में नमी आदि के कारण कुछ कीड़े भी लग जाते हैं, इन्हें खलज कहा गया है और इनको मारने का भी विधान है।[३५] जो भूमि कृषि के योग्य नहीं है, उसे ऊषर, इरिण और आर्तना कहा गया है। इसमें क्षारमृतिका (खारी मिट्टी) होती है। खारी मिट्टी के कणों के लिए शतपथ ब्राह्मण में ऊषरसिकता शब्द दिया गया है।[३६]

मिट्टी के भेद : यजुर्वेद, तैत्तिरीय संहिता आदि में मिट्टी के कतिपय भेदों का उल्लेख है। ये हैं : मृद्, मृतिका (चिकनी मिट्टी), रजस्, रजस्य (धूल वाली, सामान्य मिट्टी), अश्मन्, अश्मन्वती (पत्थर वाली, पथरीली) किंशिल (छोटे कंकड़ वाली), इरिण्य (ऊसर वाली, खेती के लिए अनुपयुक्त), उर्वर्य (उपजाऊ, खेती के योग्य), सिकता, सिकत्य (बालू वाली मिट्टी)।[३७]

कृषि के भेद : कृषि के मुख्य रूप से दो भेद गिनाए हैं।[३८] ये हैं : **१. वर्ष्य :** वर्षा पर निर्भर रहने वाली कृषि। **२. अवर्ष्य :** वर्षा पर निर्भर न रहने वाली, अर्थात् वर्षा के अतिरिक्त नहर कूप तालाब आदि सिंचाई के अन्य साधनों पर निर्भर। कृषि के अन्य दो भेदों का भी उल्लेख है।[३९] ये हैं : **१. कृष्टपच्यः** : जुते हुए खेतों में उत्पन्न होने वाली कृषि। **२. अकृष्टपच्यः** बिना कृषि के उत्पन्न होने वाले अन्न। जंगल में उत्पन्न होने वाली जंगली धान (नीवार) आदि तथा फल-फूल।

कृषिकर्म : ऋग्वेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद में कृषिकर्म का विस्तार से उल्लेख है।[४०] संक्षेप में पूरे कृषिकर्म को इस प्रकार कहा जा सकता है : सर्वप्रथम कृषि-योग उर्वरा भूमि को हल के फाल से जोता जाता है।[४१] उसमें से अवांछनीय घास-फूंस, कंकड़-पत्थर आदि को निकाला जाता है। इसे

भू-परिष्कार कहते हैं। इस प्रकार खेत को बीज बोने के योग्य बनाया जाता है। कृषि के योग्य भूमि को उर्वरा या क्षेत्र कहते हैं।[४२] बैलों को रस्सी से बांधकर उन पर जुआ रखा जाता है और जुती हुई भूमि में बीज बोया जाता है।[४३] अच्छी जुती और उर्वरा भूमि में उत्तम कृषि होती है। कृषि को उपजाऊ बनाने के लिए खाद (करीष, शकन्) का उपयोग किया जाता है।[४४] यह खाद प्रायः गाय या बैल के गोबर (करीष, शकन्) की होती है। खाद को फलवती (उर्वरक) कहा गया है।[४५] अत्युतम खेती के लिए घी और शहद वाली खाद डालने का विधान है।[४६] श्री सातवलेकर ने अपने अथर्ववेद के भाष्य में घी, दूध, शहद आदि के मिश्रण से बनी खाद डालने से उत्तम कृषि होने के कुछ उदाहरण दिए हैं।[४७] बीज बोने के बाद खेत की सिंचाई की जाती है। सिंचाई का महत्व बताते हुए कहा गया है कि कृषि के लिए जल घृत के तुल्य है।[४८] बुवाई और सिंचाई के बाद निराई (अनावश्यक घास-फूंस, तृण आदि को निकालना) आदि को भी आवश्यक बताया गया है।[४९] कृषि की फसल पक जाने पर उसे दरांती (दात्र, सृणि) से काटा जाता है।[५०] कटे हुए अन्न को पूलियों (पर्ष) में बांधा जाता है और उन्हें खलिहान (खल) में इकट्ठा करके मंड़नी (मड़ाई) की जाती है।[५१] मंड़नी से अनाज का डंठल और भूसी (तुष) अलग हो जाता है। मंड़नी के बाद उसे उसाया (भूसी उड़ाना) जाता है।[५२] उसाई करने वाले का धान्यकृत् या धान्याकृत् कहते हैं।[५३] अन्न को साफ करने के लिए चलनी (तितउ) और सूप (शूर्प) का उपयोग किया जाता है।[५४] अथर्ववेद में सूप से पछोरना, भूसी को हवा में उड़ाना, भूसी को गाय आदि पशुओं के काम में लाना, भूसी को अलग करके चावल को एकत्र करना (फलीकरण) आदि का भी उल्लेख है।[५५]

अनाज को ओखली में मूसल से कूटकर साफ करने का भी वर्णन है।[५६] साफ किए हुए अनाज को बर्तन से नापकर कोठलों में रखते हैं। नापने के बर्तन को 'ऊर्दर' कहते हैं।[५७] बड़े कोठले (घड़े) को, जिसमें अनाज भरकर रखा जाता है, 'स्थिवि' कहते हैं।[५८]

कृषि के उपकरण

वेदों में कृषि के इन उपकरणों का वर्णन मिलता है

१. हल : हल के लिए लांगल और सीर शब्द है। हल के लिए कहा गया है कि वह वज्र के तुल्य कठोर (पवीरवत्) और चलाने में सुखद (सुशीम) हो। उसकी मूठ चिकनी हो।[५९]

२. सीता, फाल : हल के अगले नुकीले भाग के लिए सीता और फाल शब्द हैं।[६०] सीता शब्द कृषि के देवता के लिए भी प्रयुक्त हुआ है।[६१]

३. शुनासीर : शुनासीर के अर्थ पर पर्याप्त मतभेद है। इसका प्रयोग द्विवचन में हुआ है और इन्हें कृषिकर्म में देवता के तुल्य आराध्य माना गया है। यास्क ने शुनासीर से सस्य-समृद्धिकारी वायु और आदित्य से दो देवता लिए हैं। शुन (वायु) और सीर (आदित्य, सूर्य) अर्थ लिया है।[६२] सायण ने शुन-सुखकारी देव और सीर-हल का देवता अर्थ लिया है।[६३] प्रो. रोठ ने शुनासीर का अर्थ – शुना (हल का अगला नुकीला भाग) और सीर (हल) अर्थ लिया है।[६४] मेरे विचार से शुनासीर शब्द से हल और उर्वरा भूमि इन दोनों देवों का समन्वित रूप अभीष्ट है। सीर शब्द हल के अधिठातृ-देव के लिए हैं।

सायण और रोठ ने भी सीर से हल देवता का अर्थ लिया है। शुना या शुन शब्द का अर्थ है – सुख, शुभ या कल्याण। उर्वर भूमि सुखद और कल्याणकारी है, अतः शुन या शुना शब्द से भूमि-देवता अर्थ लेना उपयुक्त है। कृषि के लिए दो ही तत्त्व प्राथमिकता के रूप अभीष्ट हैं– सुन्दर हल और उर्वरा भूमि। अतः हल देवता और भूमि-देवता का समन्वित रूप शुनासीर है।

४. ईषा, युग, वरत्रा : हल में जो लम्बी लकड़ी (हलस) लगी रहती है, उसके लिए ईषा शब्द है। इसके निचले भाग में लोहे की फाल लगती है। इसके ऊपर जुआ (युग) रखा जाता है। हलस और जुए को रस्सी (वरत्रा) से बांधा जाता है।[६५]

५. अष्ट्रा (प्रतोद) : किसान जिस चाबुक या छड़ी से बैलों को हांकता है उसे अष्ट्रा या प्रतोद कहते हैं।[६६]

६. बैल : बैल के लिए 'वाह' शब्द का प्रयोग है। मन्त्र में कहा गया है कि बैल, कृषक, हल और चाबुक उतम होने चाहिए। जिससे हल को सरलता से चलाया जा सके।[६७] अथर्ववेद और काठक संहिता में ६,७ और १२ जुओं वाले हलों का वर्णन है। एक जुए में दो बैल लगते हैं। इस प्रकार १२, १६ और २४ बैलों वाले बड़े हल भी कृषि के काम में आते थे।[६८] बहुत बड़े खेतों की जुताई में १२ से २४ बैलों तक को जोतने की आवश्यकता पड़ी थी।

७. बीज : उत्तम अन्न के लिए उत्कृष्ट बीज आवश्यक है। ऋग्वेद और यजुर्वेद में निर्देश है कि 'कृते योनौ' अर्थात् भू-परिष्कार के बाद ही बीज बोया जाए।[६९] भूमि से कंकड़-पत्थर, घास-फूंस आदि को निकालने के बाद ही भूमि में बीज बोना लाभदायक होता है। बीज के विषय में यह भी निर्देश है कि बीज को पानी में भिगोया जाय और उसमें शक्तिवर्धक औषधियों को भी डाला जाए। इससे बीज में औषधियों की शक्ति आ जाएगी और उसकी गुणवता बढ़ जाएगी।[७०]

८. खाद : वेदों में कृषि को उपजाऊ बनाने के लिए खाद के उपयोग का वर्णन है। खाद के लिए करीष, शकन् और शकृत् (गोबर, विष्ठा) शब्दों का प्रयोग हुआ है।[७१] यह खाद प्रायः गाय, बैल, भैंस आदि के गोबर की होती थी। अथर्ववेद में खाद को 'फलवती' कहा है।[७२] इससे ज्ञात होता है कि उस समय भी खाद की उपयोगिता को ठीक समझा गया था। अत्युत्तम खेती के लिए घी, दूध, शहद और औषधियों के रस के मिश्रण से बनी खाद डालने का निर्देश है।[७३] श्री श्रीपाद दामोदर सातवलेकर ने अपने अथर्ववेदभाष्य में घी, दूध और शहद आदि के मिश्रण से बनी खाद डालने से उत्तम कृषि होने के कुछ उदाहरण प्रस्तुत किए हैं।[७४]

९. उर्वरक (Fertiliser) का प्रयोग : ऋग्वेद के एक मन्त्र में उर्वरक के लिए 'क्षेत्रसाधस्' शब्द का प्रयोग किया गया है। क्षेत्रसाधस् का अर्थ है : क्षेत्र (खेत) की उत्पादन शक्ति को बढ़ाने वाला। मन्त्र में कहा गया है कि क्षेत्रसाधस् (उर्वरक) हमें उत्कृष्ट उपज दें।[७५]

कृषि के लिए अन्य उपयोगी पदार्थ

वेदों में कृषि के लिए आवश्यक अन्य पदार्थों का भी उल्लेख है। ये हैं –

१. उर्वरा भूमि : कृषि के लिए उपजाऊ (उर्वरा) भूमि होना अनिवार्य है। अथर्ववेद का कथन है कि उर्वरा भूमि में बोया गया बीज ठीक ढंग से निकलता है।[७६] अतएव उर्वरा भूमि को प्रणाम किया गया है।[७७] यजुर्वेद में 'कृते योनौ' से स्पष्ट निर्देश है कि भू-परिष्कार के बाद ही बीज बोया जाए।[७८]

२. धूप : कृषि के लिए धूप आवश्यक है। यदि पेड़ों को धूप नहीं मिलेगी तो वे नहीं बढ़ेंगे। सूर्य की किरणों से ही पेड़ों में ऊर्जा आती और ग्लूकोस के रूप में भोजन मिलता है। यजुर्वेद का कथन है कि सूर्य की किरणें बीजों की उत्पति और उनकी वृद्धि के कारण है।[७९] एक अन्य मन्त्र में कहा गया है कि कृषि के लिए सभी अग्नियों का सहयोग प्राप्त हो।[८०] अर्थात् एक ओर सूर्य की किरणों से ऊर्जा प्राप्त हो दूसरी ओर भूमि के अन्दर व्याप्त ऊष्मा (ताप) का सहयोग मिले। दोनों अग्नियों के सहयोग से खेती में शीघ्र वृद्धि होगी। सूर्य की किरणें केवल ऊर्जा ही नहीं देती हैं, अपितु कृषि के लिए उपयोगी वृष्टि का भी कारण है।[८१]

३. वायु : कृषि के लिए वायु की भी अत्यन्त आवश्यकता होती है। विशेषरूप से कार्बन डाईआक्साइड (CO_2) रूपी वायु कृषि के लिए आवश्यक है। वायु (CO_2) , सूर्य की किरणें, जल और वृक्ष का हरिततत्व (अवितत्व. Chlorophyll) इन चारों के संश्लेषण से Photosynthesis (प्रकाश-संश्लेषण) की क्रिया होती है। इससे सभी वृक्ष-वनस्पतियों को एक ओर ग्लुकोस मिलता है और दूसरी ओर मानवमात्र को Oxygen (आक्सीजन, प्राणवायु) मिलती है। यजुर्वेद के एक मन्त्र में कृषि हेतु आवश्यक जल और वायु दोनों का एक साथ उल्लेख है। एक मन्त्र में 'वाताय' (वायु) का ६ बार उल्लेख है। [८२]

अथर्ववेद के एक मन्त्र में स्पष्टरूप से अवितत्व (रक्षक, तत्व, Chlorophyll) का उल्लेख है। मन्त्र में क्लोरोफिल के लिए 'अवि' (रक्षकतत्व) शब्द का प्रयोग है और कहा गया है कि इस अवितत्व के कारण ही वृक्षों और वनस्पतियों में हरियाली है।[८३]

४. जल और वर्षा : कृषि के लिए सिंचाई और वर्षा आवश्यक है। सिंचाई के लिए नदी कुआं, तालाब आदि साधनों की सुविधा आवश्यक होती है। यथासमय वर्षा होना भी खेती के लिए अत्यन्त आवश्यक है। अतएव यजुर्वेद में राष्ट्रीय प्रार्थना 'आ ब्रह्मन्०' मन्त्र में यथासमय वर्षा की प्रार्थना की गई है।[८४] यजुर्वेद में कृषि के साथ ही वृष्टि का उल्लेख किया गया है।[८५] इसका अभिप्राय यह है कि कृषि और वृष्टि दोनों परस्पर सम्बद्ध है। वर्षा के बिना उत्तम कृषि नहीं हो सकती है।

अथर्ववेद में भूमि को 'पर्जन्यपत्नी' और 'वर्षमेदस्' कहा गया है।[८६] इसका अभिप्राय यह है कि मेघ और वर्षा पृथिवी के पालक है। वर्षा से पृथिवी को जीवनी शक्ति प्राप्त होती है। इससे ही उतम कृषि होती है। वर्षमेदस् का अभिप्राय है कि वर्षा से पृथिवी को जीवनी शक्ति प्राप्त होती है और उससे वह हृष्ट पुष्ट होती है। उसमें नवजीवन का संचार होता है।

कौटिल्य और कृषि : आचार्य कौटिल्य ने कौटिलीय अर्थशास्त्र के 'सीताध्यक्ष' प्रकरण में कृषि-सम्बन्धी कुछ अत्यन्त उपयोगी बाते दी हैं।[८७] ये हैं –

धान के बीजों को सात तक दिन रात की ओस और दिन की धूप में रखना चाहिए। मूंग,

उड़द आदि के बीजों को इसी प्रकार तीन दिन-रात या पांच दिन-रात ओस और धूप में रखें। बोने से पहले प्रत्येक बीज को स्वर्ण से छुए हुए जल में भिगोना चाहिए। बोते समय बीज की पहली मुट्ठी भरकर इस मन्त्र को पढ़कर बीज बोएं –

प्रजापतये काश्यपाय देवाय नमः सदा।
सीता मे ऋध्यतां देवी बीजेषु च धनेषु च।।

सिंचाई की ठीक व्यवस्था की जाए। सिंचाई की सुविधा को देखकर ही बीज बोया जाए। किन अन्नों को वर्षा शुरु होने से पहले बोया जाए, किन्हें वर्षा के मध्य में और किन्हें वर्षा के अन्त में बोया जाए, इसका विवरण दिया है। यह भी निर्देश दिया है कि वर्षा के अनुपात से ही बीज बोना चाहिए। सभी अन्नों को ऋतु के अनुसार बोना चाहिए। बीज जब अंकुरित हो जावें, तब उनमें छोटी मछलियों की खाद डलवानी चाहिए और उन्हें सेहुड़ (स्नुही) के दूध से सींचना चाहिए। सांप की केंचुली और बिनौला को एक साथ मिलाकर जलावें। जहां तक उनका धुआं फैलेगा, वहां तक कोई सांप नहीं रह सकेगा। खलिहान में साफ किए हुए अन्न को सुरक्षित स्थान पर ले जाकर रखें। खलिहान में पुआल, भूसा आदि कुछ न छोड़ें। खलिहान के पास आग न रखें। वहां जल की व्यवस्था अवश्य होनी चाहिए।

कृषिनाशक तत्त्व (ईति)

कृषि को हानि पहुंचाने वाले तत्वों को 'ईति' कहते हैं। स्मृतियों में ६ ईतियों का उल्लेख है : १. अतिवृष्टि (वर्षा अधिक होना), २. अनावृष्टि (वर्षा का न होना), ३. मूषक (चूहे), ४. शलभ (टिड्डी), ५. शुक (तोते) ६. समीप में सेना का पड़ाव।[८८]

अथर्ववेद में कृषिनाशक इन तत्वों का उल्लेख मिलता है –

१. अतिवृष्टि और अनावृष्टि : एक मन्त्र में अतिवृष्टि और अनावृष्टि का संकेत करते हुए कहा गया है कि बिजली खेती पर न गिरे और सूर्य की तीव्र किरणें खेती को नष्ट न करें।[८९] घोर वर्षा के साथ बिजली गिरना खेती को हानि पहुंचाता है। इसी प्रकार वर्षा के अभाव में सूर्य की तीव्र किरणें खेती को सुखा देती हैं।

२. धूप और हिमपात : अथर्ववेद के एक मन्त्र में सूर्य की कड़ी धूप (घ्रंस्) और हिमपात या पाला पड़ना को कृषि के लिए घातक बताया गया है।[९०]

३. आखु (चूहा) : अथर्ववेद में कृषिनाशक तत्वों में आखु (चूहा) का नाम मुख्य रूप से लिया गया है। इसके विषय में कहा गया है कि इसका सिर फोड़ दो, इसकी कमर तोड़ दो, इसका मुंह बांध दो, जिससे जौ आदि अनाज को बचाया जा सके।[९१]

४. तर्द, पतंग, जभ्य और उपक्वस : अथर्ववेद में कृषिनाशक तत्वों में इन चार जीवों का भी उल्लेख है। 'तर्द' का अर्थ है – छेद करने वाला। यह मुख्य रूप से लकड़ी में छेद करने वाले पक्षी कठफोड़वा या खुटबढ़ैया के लिए है। सामान्यरूप से कृषिनाशक पक्षियों के लिए है। 'पतंग' शब्द टिड्डियों के लिए है। 'जभ्य' अन्न को चाट जाने वाले घुन या सुरसुरी के लिए है। 'उपक्वस' अन्न या बीज को खा जाने वाले कीड़े का नाम है। इन सबको नष्ट करने का विधान है।[९२]

५. व्यद्वर : अथर्ववेद में कृषिनाशक तत्वों को व्यद्वर (अन्न खाने या चाट जाने वाले कीड़े) नाम दिया है।[९३] इस सबको मार डालने का उल्लेख है। ये कीड़े जंगली और घरेलू दोनों प्रकार के हो सकते हैं। जंगली कीड़ों को 'आरण्य' कहा है। कृषि को नष्ट करने के कारण इन्हें तर्दापति (अन्न में छेद कर देने वाले), वघापति (जहरीला कीट) और तृष्टजम्भ (तेज दांत वाले कीट) कहा गया है।[९४]

६. मटची (टिड्डी) : छान्दोग्य उपनिषद् में टिड्डियों के लिए मटची शब्द दिया है। उपनिषद् में उल्लेख है कि टिड्डियों ने एक बार पूरे कुरु जनपद की खेती नष्ट कर दी थी और वहां अकाल पड़ गया था।[९५]

७. जलचर पक्षी : ऋग्वेद में जलचर पक्षियों को कृषिनाशक बताया गया है और कहा गया है कि कृषक जलचर पक्षियों से अपने खेत की रक्षा करते थे।[९६] पाणिनि और पंतजलि ने अवृष्टि (अवग्रह, सूखा पड़ना ३.३.५१), आखू (चूहा), शलभ (टिड्डी) और श्येन (बाज) (पा.३.२.४) को कृषिनाशक बताया है।

सिंचाई के साधन

ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद और तैत्तिरीय संहिता में सिंचाई के साधनों के विषय में पर्याप्त सामग्री मिलती है। इनमें मुख्य ये हैं –

वर्षा : वेदों में वर्षा को सिंचाई का प्रमुख साधन बताया गया है। ऋग्वेद के पर्जन्य सूक्त और अथर्ववेद के वृष्टिसूक्त में वर्षा का बहुत सजीव चित्रण हुआ है।[९७] अथर्ववेद के प्राणसूक्त में भी वर्षा को प्राण-स्वरुप बताते हुए वर्षा के लाभों का बहुत विस्तार से वर्णन है।[९८] इनमें वर्णन किया गया है कि किस प्रकार वर्षा भूमि को जल से आप्लावित कर देती है और सभी औषधियों, वनस्पतियों और अन्न आदि मानवीय चेतना का संचार हो जाता है। वर्षा से पृथिवी के तृप्त होने से सभी प्रकार के अन्न और वनस्पतियां उत्पन्न होती है। वर्षा केवल जल ही नहीं है, अपितु वृक्ष-वनस्पतियों और कृषि के लिए प्राण-स्वरूप है। एक मन्त्र में तो मेघ (बादल) की प्रंशसा करते हुए उसे शक्तिशाली पिता तक कह दिया गया है, क्योंकि वह प्यासी धरती को पानी पिलाकर उसकी जान बचाता है।[९९] यजुर्वेद और तैत्तिरीय संहिता में भी वर्षा के महत्त्व का वर्णन है।[१००] यजुर्वेद में वर्षा की प्रक्रिया का वर्णन करते हुए कहा गया है कि किस प्रकार बादल बनते हैं और उनसे हलकी से लेकर तीव्र तक वर्षा होती है।[१०१] तैत्तिरीय संहिता में भी वर्षा के विभिन्न रूपों का वर्णन मिलता है।[१०२] इसमें यज्ञ के द्वारा वर्षा कराने और वर्षा रोकने के प्रकार का भी विस्तृत विवरण दिया गया है।[१०३] ऋग्वेद में भी अतिवृष्टि रोकने के लिए प्रार्थना की गई है।[१०४]

सिंचाई के अन्य साधन : (क) नहरों के जल से सिंचाई,[१०५] (ख) नदियों के जल से सिंचाई,[१०६] (ग) तालाबों के जल से सिंचाई,[१०७] (घ) कुएं आदि से सिंचाई।[१०८]

ऋग्वेद में चार प्रकार के जल का वर्णन है।[१०९] जिसका उपयोग सिंचाई के लिए होता था :
(क) दिव्या : वर्षा का जल, **(ख) खनित्रिमा :** कुओं आदि का जल,
(ग) स्वयंजा : स्रोत आदि का जल, **(घ) समुद्रार्था :** समुद्र में मिलने वाली नदियों का जल।

यजुर्वेद और तैत्तिरीय संहिता में सिंचाई के इन साधनों का उल्लेख है : कुआं, नहर, तालाब, नदी, जलाशय, स्रोतों का जल।[११०]

ऋग्वेद में सिंचाई के लिए कुआं (अवत) का उल्लेख करते हुए उसके उपकरणों का भी उल्लेख है। कुंए से सिंचाई के लिए कोश (चरस, चरसा या मोट) और वरत्रा (मोटी रस्सी, बरत) का उपयोग होता था। कुएं से निकला हुआ पानी अश्मचक्र (बड़ी पत्थर की पटिया) पर गिरता था। वहां से नाली के द्वारा वह आहाव (हौज) में जाता था। यह जल सिंचाई के काम आता था और पशुओं के पीने के भी काम आता था।[१११]

अन्न

अन्न का महत्त्व : वेदों में अन्न का बहुत महत्त्व वर्णित है। अन्न जीवन का आधार है। अन्न से ही मनुष्य जीवित रहते हैं।[११२] पूरा मनुष्य-समाज कृषि और अन्न पर आश्रित है। यदि अन्न न हो तो मानव जीवन का अस्तित्व ही संकट में पड़ जाएगा।[११३] अतएव अथर्ववेद में अन्न (इरा, इरावती) को ही विराट् ब्रह्म का रूप माना गया है।[११४] अन्न मनुष्य को शक्ति और जीवन-ज्योति देता है उसके निर्धनतारूपी कष्ट को दूर करता है, अतः अन्न को 'ज्योतिष्मती' (प्रकाश और शक्ति देने वाला) कहा गया है।[११५] अथर्ववेद में अन्न को तेजस्विता और ऊर्जा देने वाला बताया गया है।[११६]

अनेक मन्त्रों में अन्न-स्मृद्धि की प्रार्थना की गई है। अथर्ववेद के एक सूक्त में अन्नसमृद्धि की ही प्रार्थना है। इसमें कहा गया है कि द्युलोक और समुद्र की तरह कृषि फूले-फले। अन्न का अक्षय भण्डार हो।[११७] हजारों धाराओं से अन्न हमारे पास आवे।[११८] कृषि प्रतिवर्ष उत्तम होती जाए।[११९]

अन्न के दो प्रकार : यजुर्वेद और तैत्तिरीय संहिता में अन्न दो प्रकार का बताया गया है : **१. कृष्टपच्य :** जो कृषि से उत्पन्न होता है। जैसे – जौ, गेहूं, धान आदि। **२. अकृष्टपच्य :** जो बिना कृषि के उत्पन्न होता है। जैसे जंगली धान्य, नीवार आदि।[१२०] अन्न के दो अन्य भेदों का भी उल्लेख है : **१. वर्ष्य :** वर्षा के उत्पन्न अन्नों को 'वर्ष्य' कहते हैं। **२. अवर्ष्य :** वर्षा के अतिरिक्त कुएं-नहर आदि की सिंचाई से उत्पन्न अन्नों को 'अवर्ष्य' कहते हैं।[१२१]

सस्य या फसलें : तैत्तिरीय संहिता में अन्नों के कटने के हिसाब से चार फसलों का उल्लेख है।[१२२] १. ग्रीष्म ऋतु में कटने वाली। इनमें जौ, गेहूं मुख्य है। ३. वर्षा में कटने वाली। इसमें कुछ अन्नों (औषधियों) का उल्लेख है। ४. शरद् में कटने वाली। इसमें व्रीहि (धान) मुख्य है। ४. हेमन्त और शिशिर में कटने वाली। इसमें माष (उड़द) और तिल (तिलहन) मुख्य हैं।

आजकल ग्रीष्म में कटने वाली फसल को 'रबी' और शरद् में कटने वाली फसल को 'खरीफ' कहते हैं। तैत्तिरीय संहिता में ही अन्य स्थान पर कहा गया है कि वर्ष में मुख्य रूप से दो फसलें (सस्य) होती हैं।[१२३] इन्हें रबी और खरीफ की फसल समझना चाहिए।

पाणिनि ने बोने के हिसाब से तीन फसलों का उल्लेख किया है : आश्विन या आश्वयुज में बोई गई 'आश्वयुजक' (असौजी)। यह चैत में कटती थी।[१२४] ग्रीष्म में बोई गई 'ग्रैष्म' या 'ग्रैष्मक'। यह मार्गशीर्ष (अगहन) में कटती थी।[१२५] वसन्त में बोई गई - 'वासन्त' या 'वासन्तक'। यह ज्येष्ठ में

कटती थी।[१२६]

कौटिल्य ने भी बोने और कटने के समय के अनुसार तीन फसलों का उल्लेख किया है। ये हैंः १. हैमन सस्य (हेमन्त या आश्विन में बोई जाने वाली)। यह चैत में कटती थी। २. वार्षिक सस्य (वर्षा में बोई जाने वाली)। यह अगहन में कटती थी। ३. वासन्तिक सस्य (वसन्त में बोई जाने वाली) यह ज्येष्ठ में कटती थी।

पाणिनि ने बोने के समय को 'वाप' कहा है और कौटिल्य ने 'सस्य'। पाणिनि ने फसल पकने या कटने के समय को 'पच्यमान काल' कहा है और कौटिल्य ने उसे 'मुष्टि' कहा है।[१२७]

अन्नों के नाम : यजुर्वेद और तैत्तिरीय संहिता में बारह अनाजों के नाम प्राप्त होते हैं।[१२८] ये हैं : १. व्रीहि (धान), २. यव (जौ), ३. माष (उड़द), ४. तिल (तिल), ५. मुद्ग (मूंग), ६. खल्व (चना), ७. प्रियंगु (कंगुनी धान), ८. अणु (पतला या छोटा चावल), ९. श्यामाक (साँवा), १०. नीवार (कोदों या तिन्नी धान), ११. गोधूम (गेहूं), १२. मसूर (मसूर)।

तैत्तिरीय संहिता में कुछ अन्य अनाजों के नाम भी मिलते हैं।[१२९] ये तीन प्रकार के हैं : व्रीहि (धान), गवीधुक और आम्ब।

१. कृष्ण व्रीहि : काला धान। यह संभवतः बगरी धान है। इसका छिलका काला होता है, परन्तु चावल लाल होता है। यह अगहन में होने वाला धान है।

२. आशु व्रीहि : जल्दी पकने वाला धान। यह साठी धान हो सकता है। पाणिनि ने इसको षष्टिका (६० दिनों में पकने वाला) कहा है।[१३०]

३. महाव्रीहि : यह बड़े दाने वाला चावल है। यह बासमती चावल हो सकता है। पाणिनि ने इसका उल्लेख किया है।[१३१]

४. गवीधुक : इसके शतपथ ब्राह्मण में 'गवेधुक' कहा गया है।[१३२] यह जंगली गेहूं है। इसको हिन्दी में गड़हेरुआ या गोभी कहते हैं। इसका चरु (लपसी) बनता था।

५. आम्ब : शतपथ ब्राह्मण में इसे 'नाम्ब' कहा गया है।[१३३] यह एक प्रकार का धान्य है। कुछ आचार्यों ने इसे 'कमल बीज' माना है। इसका चरु (लपसी, पतला हलुआ) बनता था।

६. उपवाक : यजुर्वेद और शतपथ ब्राह्मण में इसका उल्लेख है।[१३४] यह जौ का एक भेद इन्द्रयव (इन्द्र जौ) है। महीधर ने इसका अर्थ जौ किया है। इसका करम्भ (पतला हलुआ) बनता था।

बृहदारण्यक उपनिषद् में दस प्रकार के ग्राम्य धान्यों का उल्लेख है।[१३५] ये हैं : व्रीहि, यव, तिल, माष (उड़द), प्रियंगु (कंगुनी धान), अणु (छोटे दाने वाला चावल), गोधूम (गेहूं), मसूर, खल्व (चना), खलकुल (कुलत्थ, कुलथी)। कुलथी को दाल या सत्तू बनाकर खाया जाता था। पाणिनि ने दाल आदि में तड़का देने वाले (संस्कारक) पदार्थों में इसका उल्लेख किया है।[१३६]

अन्नों को अन्न, दाल, तिलहन इन तीन भागों में बांटा जाता है। यजुर्वेद की सूची में इन तीनों के प्रतीक मिलते हैं। १. अन्न : जौ, गेहूं, चावल आदि। २. दाल : मूंग, मसूर और उड़द। ३. तिलहन : तिल।

संदर्भ :

१. सीरा युञ्जन्ति कवयो .. धीरा० । ऋग् १०.१०१.४ । अ. ३.१७.१
२. इन्द्रः सीतां नि गृह्णातु तां पूषा० । अ. ३.१७.४
३. यवं वृकेणाश्विना वपन्त० । ऋग्० १.११७.२१
४. कृष्टराधिरुपजीवनीयो भवति । अ. ८.१०.२४
५. यद् यामं चक्रुः ... कार्षीवणा अन्नविदः । अ. ६.११६.१
६. अन्ने समस्य यदसन् मनीषाः । अ. २०.७६.४
७. कृषिं च सस्यं च मनुष्या उप जीवन्ति । अ. ८.१०.२४
८. कृष्यै त्वा क्षेमाय त्वा रय्यै त्वा पोषाय त्वा । यजु. ९.२२
९. कृषन्तः वपन्तः, लुनन्तः, मृणन्तः । शत० ब्रा० १.६.१.३
१०. देवास आयन् परशून् अबिभ्रन, वन वृश्चन्तो अभि विड्भिरायन् ।
नि सुद्र्वं दधतो वक्षणासु, यत्रा कृपीटमनु तद् दहन्ति ।। ऋग्० १०.२८.८
११. पृथी यद् वां वैन्यः । ऋग् ८.९.१०
१२. पृथिम्० । ऋग्० १.११२.१५
१३. तां. पृथी वैन्योऽधोक्, तां कृषिं च सस्यं चाधोक् । अ. ८.१०.२४
१४. शत. ५.३.५.४
१५. जै.ब्रा. १.१८६ । जै.उप.ब्रा. १.१०.९
१६. ता. ब्रा. १३.५.२०
१७. देवा इमं मधुना संयुतं यवं, सरस्वत्यामधि मणावचर्कृषुः ।
इन्द्र आसीत् सीरपतिः शतक्रतुः, कीनाशा आसन् मरुतः सुदानवः ।। अ. ६.३०.१
१८. (क) राजा पृथुर्वैन्यः प्रतापवान् । .... उज्जहार — शिला जालान् । शान्तिपर्व ४९.११३-११५
(ख) तेनेयं पृथिवी दुग्धा सस्यानि दश सप्त च । शान्ति. ५९.१२४
१९. भागवत पुराण, स्कन्ध ४. अध्याय १६-२३
२०. क्षेत्रमिव वि ममुस्तेजनेन । ऋग् १.११०.५
२१. इन्द्र वि रोहय ... ततस्योर्वराम् । ऋग् ८.९१.५
२२. अन्यस्य बलिकृत् । ऐत.ब्रा. ३५.३
२३. बलिहृतः । ऋग्. ७.६.५ । १०.१७३.६ । अथर्व. ११.१.६
२४. नमः क्षेत्रस्य पतये । अ. २.८.५
२५. क्षेत्राणां पतये नमः । यजु. १६.१८
२६. क्षेत्रस्य पत्नी । अ. २.१२.१
२७. शं नः क्षेत्रस्य परिरस्तु शंभुः । अ. १९.१०.१०
२८. इन्द्र आसीत् सीरपतिः .. कीनाशा आसन् मरुतः । अ. ६.३०.१
२९. अक्षेत्रवित् क्षेत्रविदं ह्यप्राट् । ऋग् १०.३२.७
३०. यः क्षेत्रे पशुषु वा विवदेत, इन्द्रो वै ... क्षेत्रंजयः । मैं. सं. २.२.११
३१. त्रसदस्युमावः क्षेत्रसाता ... पुरुम् । ऋग् ७.१९.३ । अ. २०.३७.३
३२. उर्वरायाम् । अ. १०.६.३३ ।

उर्वर्याय, शष्प्याय, इरिण्याय । यजु. १६.३३, ४२ और ४३ । तैत्ति. सं. ४.५.६ से ६

३३. अप्नस्वतीषु, उर्वरासु, आर्तनासु । ऋग्. १.१२७.६

३४. खले । ऋग्. १०.४८.७ । खल्याय । यजु. १६.३३

३५. खलजाः ... तान् नाशय । अ. ८.६.१५

३६. शत. ब्रा. कांड ६

३७. मृत्तिका । यजु. १८.१३ । रजस्याय । यजु. १६.४५ । अश्मा । अ. १२.१.२६ । किंशिलाय । यजु. १६.४३ । इरिण्याय । यजु. १६.४३ । उर्वर्याय । यजु. १६.३३ । सिकत्याय । यजु. १६.४३

३८. वर्ष्याय, अवर्ष्याय । यजु. १६.३८ । तैत्ति. सं. ४.५.७.२

३९. कृष्टपच्याः, अकृष्टपच्याः । यजु. १८.१४

४०. ऋग्. ४.५७.४ से ८ । यजु. १२.६७ से ७१ । अथर्व. ३.१७.१ से ९

४१. ऋग्. ४.५७.८ । अ. ३.१७.५

४२. बीजमुर्वरायाम्. । अ. १०.६.३३

४३. युनक्त सीरा । अ. ३.१७.२

४४. करीषिणीम् । अ. १९.३१.३

४५. करीषिणीम् फलवर्ती । अ. १९.३१.३

४६. घृतेन सीता मधुना समक्ता । अ. ३.१७.९

४७. सातवलेकर, अथर्ववेद भाष्य, कांड ३, पृष्ठ. १२८

४८. आपः चिदस्मै घृतम् । अ. ७.१८.२

४९. यथा दान्ति-अनुपूर्वं वियूय । अ. २०.१२५.२

५०. सृण्यः पक्वमायन् । अ. १.१७.२

५१. ऋग्. १०.४८.७

५२. तुषं... अप तद् विनुक्त । अ. १२.३.१९

५३. धान्याकृतः । ऋग् १०.९४.१३

५४. तितउना । ऋग् १०.७१.२

५५. शूर्पम्, शूर्पग्राही, कणाः, गावः, तण्डुलः, तुषाः, फलीकरणाः । अ. ११.३.४-६

५६. मुसलम् ... उलूखलम् । अ. ११.३.३

५७. ऊर्दरम् । ऋग्. २.१४.११

५८. स्थिविभ्यः । ऋग् १०.६८.३

५९. लाङ्गलं पवीरवत् । अ. ३.१७.३ । सीराः । यजु. १२.६७

६०. सीताम् । अ. ३.१७.४ । सुफालाः । अ. ३.१७.५

६१. सीते वन्दामहे । अ. ३.१७.८

६२. शुनो वायुः, सीर आदित्यः । निरुक्त ९.४०

६३. सायण, अथर्व. ३.१७.५

६४. Vedic Index Vol.२, p-३८६

६५. ईषायुगेभ्यः । अ. २.८.४ । वरत्रा । अ. ३.१७.६

६६. अष्ट्राम् । अ. ३.१७.६ । प्रतोदः । अ. १५.२.७

६७. शूनं वाहाः। अ. ३.१७.६
६८. (क) अष्टायोगैः षड्योगेभिः। अ. ६.९१.१
(ख) सीरं वा द्वादशयोगम्। काठक सं. १५.२
६९. कृते योनौ वपतेह बीजम्। ऋग्. १०.१०१.३। यजु. १२.६८
७०. सं वपामि समाप ओषधीभिः समोषधयो रसेन। यजु. १.२१
७१. करीषिणीः। अ. ३.१४.३। शकृत्। ऋग् १.१६१.१०
७२. करीषिणीं फलवतीम्। अ. १९.३१.३
७३. घृतेन सीता मधुना समज्यताम्। ... पयसा पिन्वमाना। यजु. १२.७०
७४. सातवलेकर, अथर्ववेद भाष्य, कांड ३, पृष्ठ १२८
७५. ते नो व्यन्तु वार्यं देवत्रा क्षेत्रसाधसः। ऋग् ३.८.७
७६. यथा बीजमुर्वरायां कृष्टे फालेन रोहति। अ. १०.६.३३
७७. नम उर्वर्याय। यजु. १६.३३
७८. यजु. १२.६८
७९. तस्यां नो देवः सविता घर्मं साविषत्। यजु. १८.३०
८०. विश्वे भवन्त्यग्नयः समिद्धा। यजु. १८.३१
८१. सूर्यस्य रश्मये वृष्टिवनये। यजु. ३८.६
८२. समुद्राय त्वा वाताय .. सरिराय त्वा वाताय। यजु. ३८.४
८३. अविर्वै नाम देवता-ऋतेनास्ते परीवृता। तस्या रूपेणेमे वृक्षा हरिता हरितस्रजः। अ. १०.८.३१
८४. निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु। यजु. २२.२२
८५. कृषिश्च मे वृष्टिश्च में। यजु. १८.९
८६. भूम्यै पर्जन्यपत्न्यै नमोऽस्तु वर्षमेदसे। अ. १२.१.४२
८७. कौ. अर्थ. पृष्ठ २३८ से २४४ (गैरोला संस्करण)
८८. अतिवृष्टिरनावृष्टिर्मूषकाः शलभाः शुकाः। अत्यासन्नाश्च राजानः षडेता ईतयः स्मृताः।।
८९. मा नो वधीर्विद्युता देव सस्यं मोत वधी रश्मिभिः सूर्यस्य। अ. ७.११.१
९०. न घ्रंस् - तताप न हिमो जघान। अ. ७.१८.२
९१. हतं .. आखुम् ... छिन्तं शिरो। अ. ६.५०.१
९२. तर्द है पतंग है जभ्य हा उपक्वस। अ. ६.५०.२
९३. व्यद्वराः, तान् सर्वान् जम्भयामसि। अ. ६.५०.३
९४. तर्दापते वघापते तृष्टजम्भाः.। अ. ६.५०.३
९५. मटचीहतेषु कुरुषु। छा. उप. १.१०.१
९६. उदप्रुतो न वयो रक्षमाणाः। ऋग्. १०.६८.१
९७. पर्जन्य सूक्त, ऋग्. ५.८३। वृष्टिसूक्त, अ. ४.१५
९८. प्राणसूक्त, अ. ११.४
९९. अपो निषिञ्चन् असुरः पिता नः। अ. ४.१५.१२
१००. यजु. २.१६। १४.८। १५.६
१०१. यजु. २२.२६
१०२. तैत्ति. सं. २.४.७.८। ७.५.११

१०३. तैत्ति. सं. १.४.७ से ११
१०४. ऋग्. ५.८३.१०
१०५. कुल्या इव ह्रदम् । अ. २०.१७.७
१०६. सिन्धुभ्यः । अ. १.४.३
१०७. अनूप्याः । अ. १.६.४
१०८. खनित्रिमाः । अ. १.६.४
१०९. या आपो दिव्याः खनित्रिमाः ... स्वयंजाः । समुद्रार्थाः.. ता आपः. । ऋग्. ७.४९.२
११०. स्रुत्याय, काट्याय, नीप्याय, सरस्याय, कुल्याय, नादेयाय, वैशन्तान, कूप्याय, अवट्याय, मेघ्याय, वर्ष्याय । यजु. १६.३७-३८ । तैत्ति. सं. ४.५.७.१ और २
१११. ऋग्. १०.१०१.५ से ७
११२. जीवन्ति स्वधयाऽन्नेन मर्त्याः । अ. १२.१.२२
११३. कृषिं च सस्यं च मनुषया उपजीवन्ति. । अ. ८.१०.२४
११४. इरावती-एहीति । अ. ८.१०.२४
११५. ज्योतिष्मती .. रासतामिषम् । अ. १९.४०.४५.
११६. अन्नतेजाः । अ. १०.५.३४
११७. अ. ६.१४२.१ से ३
११८. धान्यं सहस्रधारमक्षितम् । अ. १०.५.३४
११९. पयस्वती दुहाम् उत्तरामुत्तरां समाम् । अ. ३.१७.४
१२०. कृष्टपच्याश्च मेऽकृष्टपच्याश्च मे । यजु. १८.१४ । तैत्ति. सं. ४.७.५
१२१. वर्ष्याय चावर्ष्याय च । यजु. १६.३८
१२२. यवं ग्रीष्माय, ओषधीर्वर्षाभ्यः, व्रीहिन्, शरदे, माषतिलौ हेमन्तशिशिराभ्याम् । तै. सं. ७.२.१०.२
१२३. द्विः संवत्सरस्य सस्यं पच्यते । तैत्ति. सं. ५.१.७.३
१२४. पां. ४.३.४५
१२५. पा. ४.३.४६
१२६. पा. ४.३.४६
१२७. डा. अग्रवाल, पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृष्ठ २०५-२०६ । कौ. अर्थ. २.२४
१२८. व्रीहयः, यवाः. । यजु. १८.१२ । तैत्ति. सं. ४.७.४.२
१२९. कृष्णानां व्रीहीणाम्, आशूनां व्रीहिणाम्, महाव्रीहीणाम्, गावीधुकं चरुम्, आम्बानां चरुम् । तैति. सं. १.८.१०.१
१३०. षष्टिकाः षष्टिरात्रेण पच्यन्ते । पा. ५.१.१०
१३१. पा. ६.२.३८
१३२. शत. ९-१.१.८
१३३. शत. ५-३.३.८
१३४. यजु. १९.२२ । शत. १२.७.१.३
१३५. दश ग्राम्याणि धान्यानि भवन्ति, व्रीहियवाः । बृ.उप. ६.३.१३
१३६. पा. ४.४.४

पर्व-त्यौहार

मण्डी के पर्वतीय ग्रामांचल में शिवरात्रि महोत्सव

डॉ. दायक राम ठाकुर

भगवान शिव की उपासना सम्पूर्ण भारतवर्ष में प्रचलित है। हजारों वर्षों से काशी स्थित भगवान विश्वनाथ, उज्जैन स्थित भगवान महाकाल या महाकालेश्वर, गुजरात में सोमनाथ, उतराखण्ड में बाबा केदारनाथ, कश्मीर में बाबा अमरनाथ इत्यादि अनेकों मन्दिर शिव आस्था के प्रत्यक्ष साक्षी हैं। हिमालय पर्वत शृंखलाओं में भगवान शिव हमेशा विचरण करते रहते हैं क्योंकि शिव का निवास स्थान कैलाश पर्वत माना जाता है। हिमाचल प्रदेश में भी तीन कैलाश पर्वत हैं जिनमें जिला कुल्लू में श्रीखण्ड कैलाश, जिला किन्नौर में किन्नर कैलाश, जिला चम्बा में मणिमहेश कैलाश स्थित हैं। सबसे बड़ा कैलाश मानसरोवर झील के साथ उतुंग पर्वत है। जो महाकैलाश कहलाता है।

महाशिवरात्रि महोत्सव का सम्बन्ध शिव उपासना के साथ है। शिवपुराण के अनुसार आततायी राक्षस तारकासुर की मृत्यु शिवपुत्र कीर्तिकेय स्वामी के हाथों में लिखी गई थी। इसलिए शिव-पार्वती का पाणिग्रहण सम्पन्न होना आवश्यक था। शिव-पार्वती के विवाह को ही शिवरात्रि का महोत्सव माना जाता है। इस प्रकार शिव विवाह को अत्याचारी राक्षस से मुक्ति, न्याय की पुनर्स्थापना, लोक कल्याण व सुख-समृद्धि का पर्याय माना जाता है। शिव-पार्वती के शुभ विवाह को महाशिवरात्रि महोत्सव के रूप में भारत ही नहीं, पूरे विश्व में हिन्दू समाज द्वारा बड़ी आस्था व उल्लास के साथ मनाया जाता है।

मण्डी शिवरात्रि का विहंगम दृश्य

हिमाचल प्रदेश में भी सर्वत्र शिवरात्रि के मेले लगते हैं जिसमें ज़िला मण्डी के मुख्यालय मण्डी नगर का शिवरात्रि पर्व अन्तर्राष्ट्रीय महोत्सव के रूप में आयोजित होता है। इस मेले के मुख्य देव भगवान्

भूतनाथ शिव हैं, लेकिन इस मेले में देवाधिदेव का प्रधान स्थान राजमाधव श्रीकृष्ण भगवान को प्राप्त है। भगवान् शिव की शिवरात्रि में विष्णु अवतार श्रीकृष्ण की प्रधानता भारतीय संस्कृति की समन्वयात्मक मूल प्रकृति का साक्षात् दर्शन है। मण्डी शिवरात्रि में दूर-दूर के गांव से जनपदीय देवी देवता सम्मिलित होते है जिससे यह मेला देवी-देवताओं के महा-मिलन पर्व के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त है।

मण्डी के अन्तर्राष्ट्रीय शिवरात्रि महोत्सव के अतिरिक्त मण्डी जिला के ऊंचे पर्वतीय ग्रामांचल में शिवरात्रि महोत्सव को संक्रान्ति की तरह घर-घर में मनाया जाता है, इसीलिए शिवरात्रि के दिन को **साजी शबरात** अर्थात् **शिवरात्रि संक्रान्ति** कहते हैं। इस महोत्सव के मनाने की तैयारी महीना-पन्द्रह दिन पहले आरम्भ हो जाती है। घर-आंगन की सफाई, लिपाई, सफेदी एवं खाने-पीने की सामग्री का प्रबन्ध प्रत्येक परिवार करता है।

कच्चे मकानों में **मकोल** (सफेद-मिट्टी) की सफेदी की जाती है जिसकी जगह आज चूना व पेंट ने ले ली है। इस अवसर पर प्रत्येक रसोई में **कड़ाही** लगती है, कड़ाही भोजन पकाने का लोहे का पात्र होता है। कड़ाही लगाने का अर्थ है तेल में तली हुई रोटियां या व्यंजन बनाना। शिवरात्रि के एक दिन पहले जिसे **आवका** या **अंगीया** कहा जाता है, से तेल में तली हुंई रोटियां बनाना शुरु हो जाता है। गेहूं के आटे से निर्मित इन तली हुई रोटियों को पोली, पोल्टू, कड़ाही की रोटियां या तरवां रोटियां कहा जाता है। प्रत्येक रसोई में कड़ाही लगाना शुभ माना जाता है। यदि शिवरात्रि के दिन कोई अशुभ घटना घट जाए जैसे परिवार में किसी की मृत्यु इत्यादि तो उस परिवार में यह पर्व नहीं मनाया जाता। यह उस परिवार में फिर से तब आरम्भ किया जाता है। जब उस घर में इस दिन बच्चे का जन्म हो एवं गाय की बछड़ी या बछड़ा जन्म ले।

आवके अर्थात् शिवरात्रि के एक दिन पूर्व एक निश्चित कमरे में जहां पूजा स्थल होता है, के पास की दीवार पर भिति चित्र बनाया जाता है, जिसे **कौंवरा** कहा जाता है। कौंवरे में दो-तीन रंगों के दीवार पर शिव मन्दिर इत्यादि प्रतीक स्वरूप चित्रित होते हैं। कौंवरा बनाने की परम्परा साधारणतः विवाह-शादियों में दुल्हन व दुल्हा के अनुष्ठान के कमरे में भी होती है। मन्दिर स्वरुप चित्र के शीर्ष पर मोर का चित्र बनाया जाता है, मुख्य द्वार पर घण्टा बनाया जाता है। मध्य में शिव-पार्वती का चित्र, आस-पास नाटी डालते शिव गण, शिव पार्वती की पालकी उठाते लोग, नन्दी, त्रिशूल, ॐ का चिन्ह, फूल, कैमटी इत्यादि के चित्र प्रमुखतः बनाए जाते हैं। **कैमटी** सन्तरा या नींबू प्रजाति की ही तरह एक वृक्ष होता है, जिस पर सन्तरे की तरह फल लगते है, जिन्हें स्थानीय बोली में **कैम्ब** या **कुपु** कहा जाता है। शिवरात्रि के दिन इन फलों की पूजा का विशेष महत्त्व है। कैम्ब के दो बड़े-बड़े फल कौंवरे के पास पूजा स्थल पर आवके के दिन ही स्थापित किए जाते हैं। इन्हें **ईश्र** या **ईश्वर** या **शीर्ष कुप्पु** कहा जाता है। इन फलों की पूजा शिवरात्रि की पूर्व संध्या पर प्रारम्भ हो जाती है। जिसे स्थानीय बोली में **कुप्पु पूजना** कहते हैं। कौंवरे के भित्तिचित्र में मन्दिर का ढांचा आवके के दिन बनाया जाता है जबकि शिव पार्वती

का चित्र व अन्य चित्र महाशिवरात्रि के दिन बनाए जाते हैं।

शिवरात्रि के दिन अनेक प्रकार के भोज्य व्यंजन बनाए जाते हैं, जिनमें रोट या रोटू, मखरोल, मुन्द्रा, पोल्टू, बाबरू, भल्ले, हलवा इत्यादि प्रमुख हैं। **रोट** शिव का प्रमुख प्रसाद माना जाता है जो सामान्य रोटी से बड़े आकार का होता है, इसलिए इसे रोट कहा जाता है। कौंवरे के पास पूजा स्थल की गोबर से लिपाई की जाती है, तत्पश्चात् इसके ऊपर चावल के दाने बिखेर दिए जाते हैं। चावल के ऊपर रोटियां इस प्रकार रखी जाती हैं, जिसमें सबसे नीचे पोलू, उसके ऊपर, भल्ला, साथ ही मुन्द्रा व हलवा इत्यादि रखे जाते हैं। दीवार के साथ सात या नौ रोट खड़े रखे जाते हैं। साथ ही मखरोलू, आटे के बकरे भी रखे जाते है, ये सभी खाद्य-व्यंजन गेहूं के आटे के बनाए जाते हैं। सामान्यतः सभी भोज्य पदार्थों में गुड़ का मीठा पड़ा होता है। पोलू मीठे या नमकीन हो सकते हैं जबकि भल्ले नमकीन होते हैं। **बराटनु** लकड़ी का एक गोल सांचा होता है जिस पर फूल या अन्य कई प्रकार के डिजाइन बने होते हैं, से बाबरुओं, मखरोलुवों व रोटों पर निशान बनाए जाते हैं जो पकने के उपरान्त बहुत सुन्दर लगते हैं। ऐसा लगता है कि इन रोटियों पर विशेष किस्म की चित्रकारी उकेर दी गई हो। मुन्द्राएं गोल या अंग्रेजी के ऐस आकार की बनाई जाती है। जो भगवान शिव के कर्ण-कुण्डल मानी जाती हैं। पूजा स्थल पर बांई ओर तेल का दीपक जलाया जाता है और दाहिनी ओर गेहूं या जौ के हरे पौधे मिट्टी सहित ला कर किसी बर्तन में रखे जाते हैं जिसे शिवरात्रि के दूसरे दिन उसी स्थल पर पुनः रोपित किया जाता है जहां से ये उखाड़े गये थे। पानी का लौटा, पूजा की थाली, धूप, कुंमकुम, अगरबती आदि से पूजा स्थल शोभायमान हो जाता है। इस सम्पूर्ण व्यवस्था को **मण्डल** कहा जाता है। मण्डल की स्थापना एक कला है, इसके लिए एक-एक वस्तु जुटाना व तैयार करना **मण्डल का हिसाब** कहलाता है। दीवार पर कौंवरे के बीचों बीच हार जिसे **चन्दो** कहते हैं, लगाया जाता है। चन्दो फूल माला की तरह एक लम्बी लड़ी होती है जो ऊपर खूंटी से टांग दी जाती है। यह फूल माला की तरह गोल नहीं बल्कि केवल एक लड़ी होती है। लगभग छः फुट की यह लड़ी कौंवरे के मध्य भाग को छूते हुए नीचे मण्डल तक लगा दी जाती है। चन्दो बनाना भी एक कला है। इसके लिए भेड़ की ऊन का धागा विशेष तौर पर तैयार किया जाता है। परन्तु कई बार सूत का धागा भी प्रयोग किया जाता है। पाजे के वृक्ष की पतियां, गेहूं, या जौ के पौधों की पतियां, ८००० फुट की ऊँचाई पर पाया जाने वाला नैर नामक पौधे की पतियां, बिल पत्र, कुगंश (बिच्छु बूटी) की पतियां, धतूरे के पते इत्यादि शिव प्रिय इन वस्तुओं की पतियों के एक-एक गुच्छे बना कर धागे के साथ गूंथे जाते हैं। प्रत्येक गुच्छे के बीच-बीच में एक-एक कुप्पु पिरो दिया जाता है और एक खूबसूरत लड़ी तैयार हो जाती है, इसे ही चन्दो कहा जाता है। मण्डल तैयार करना, चन्दो बनाना, कौंवरा तैयार करना का कार्य करने वाले व्यक्ति द्वारा व्रत रखना अनिवार्य है। यह सम्पूर्ण प्रक्रिया, अपराह्न एक दो बजे तक सम्पन्न होती है और पूजा-अर्चना के साथ व्रत सम्पन्न माना जाता है। इस प्रकार दोपहर बाद उपवास तोड़ दिया जाता है और इसके पश्चात व्यक्ति खाना खा सकता है। अन्य व्रतों की तरह दिन में एक समय भोजन ग्रहण का नियम नहीं

रहता।

इस महोत्सव में शिव-स्तुति स्वरूप **आंचली** एवं **जती** गायन एवं नृत्य का विशेष महत्व है। वर्षों पहले इस गायन एवं नृत्य विधा का बहुत प्रचलन था। शिवरात्रि के एक दिन पूर्व नाट का आयोजन गांव-गांव में प्रारम्भ हो जाता था जबकि शिवरात्रि के दिन यह चरम सीमा पर पहुंच जाता था। आंचली भगवान महादेव शिव, पार्वती, भगवान राम, सीता, श्री कृष्ण, राधा इत्यादि के यशोगान स्वरूप पहाड़ी बोली में गाई जाती है।

महादेव शिव की आंचली के कुछ अंश यहां प्रस्तुत हैं —
सांएं म्हारा पाहोणा आया लो,
सांएं म्हारा पाहोणा भाईया आया।
साईया ममेला लागा पाणी रै बूलो सामी,
तिथिया ते पनेया महादेव धूड़ो ओ सामी।
सदा शिवा लै म्हारै हार गूंदणा,
निऊला बीड़ा डूलै म्हारै कैम्बा रै डाले,
चूंगे बिंगे आणै गूरा करडो भरे।
कानै कुण्डला माथै मलणा लसेसा,
शिवजी रै सीरै निकलै धौवलै केशा,
जोग भया शिवै भर बरेसा।
शिवजी यै पाकड़ी तलवार,
लोकुओ डर करेया।

हिन्दी अनुवाद —
भगवान शिव हमारे अतिथि आए है,
भाई! भगवान शिव हमारे अतिथि आए हैं।
ममेल नामक स्थान पर पानी में बुलबुला उठा स्वामी,
उस बुलबुले में महादेव शिव उत्पन्न हुए स्वामी।
सदाशिव के लिए हार बनाना है,
निचले क्षेत्र में कुप्पु के पेड़ झूल रहे हैं,
चन्दो के हार के लिए उन्हें टोकरी भर चुन कर लाना है।
कान में कुण्डल लगाने और माथे पर घी आदि मलना है,
शिवजी के सिर पर सफेद बाल निकल आए है,
पूर्ण युवावस्था में शिवजी योगी हो गए हैं।
शिवजी ने (न्याय हेतु) तलवार पकड़ी हुई है,
लोग जिससे (दुष्कर्म करने से) डरते रहें।

आंचली गायन में ग्रामीण दो टोलियों में बंट जाते हैं, एक टोली गीत की एक पंक्ति को दो-दो बार दोहराती है और फिर दूसरी टोली उसी पंक्ति को दोहराती है। नर्तक बारी-बारी से उठ कर नाचते हैं। इन क्षेत्रों में कमरे के बीचों-बीच आग जनाने का स्थान बना होता है, जिसे **गेठा** कहते हैं। गृहिणी यहां पर भोजन पकाती है। नर्तक गेठे के चारों और घूम-घूम कर नृत्य करते है। नाटी में इस तरह का गेठा आंगन में भी जलाया जाता है जिसे **घैना** कहते हैं। जिसके चारों तरफ महिलाएं एवं पुरुष आपस

में मिलकर **नाट** (महिलाओं और पुरुषों का सामूहिक नृत्य) नाचते हैं। शिवरात्रि के नाट में गायकों व नतर्कों का कोई विशेष परिधान नहीं होता। वाद्य यन्त्रों में ढोलक, चिमटा, खंजरी, कड़ताल, कांसी, बांसुरी इत्यादि प्रमुख रहते हैं। गायन-वादन नृत्य से सारा, वातावरण दिव्य संवेदनाओं से भर कर गुंजायमान हो जाता है। आंचली की लय धीमी तथा मध्यम स्तर की होती है। नाट धीमे ताल से प्रारम्भ होता है और धीरे-धीरे भोर के समय थोड़ा तेज हो जाता है। शिवरात्रि की रात्रि गांव के सभी लोग प्रत्येक घर जा कर भगवान भोलेनाथ का गुणगान आंचली व नाट के माध्यम से करते हैं। नाट के बीच-बीच में मनोरंजन व हास-परिहास हेतु नर्तक कई प्रकार के अभिनय भी करते हैं जिसे **स्वांग** कहा जाता है। प्रातः पक्षियों के चहचहाने से पूर्व चन्दो को कमरे से बाहर निकाल कर घर के बाह्य भाग की दीवार पर टांग दिया जाता है। इस प्रक्रिया में घर का मुखिया धूप, दीप जला कर, पूजा अर्चना करके पूजा स्थल से चन्दो को निकाल कर अपने गले में डालता है और आंचली गाते गाते व नृत्य करते हुए बाहर ले जाता है। कहा जाता है कि यदि चन्दो पक्षी की आवाज आने के पश्चात भी पूजा स्थल में रह जाए, यह शुभ नहीं माना जाता। सूर्योदय से पूर्व ईश्वर या शीर्ष कुप्पुओं को भी बाहर निकाल कर पानी के समीप रखा जाता है और मण्डल को भी उठा दिया जाता है। शिव प्रसाद अर्थात् **रोटों** को आठ दिन तक सुरक्षित रखा जाता है। शिवरात्रि के आठवें दिन को **अठवार** कहा जाता है। उस दिन इन रोटियों को तवे पर गर्म करके सारे परिवार के सदस्यों में बांट दिया जाता है। यहां तक कि रिश्तेदारों को भी रोट के टुकड़े प्रसाद स्वरूप भेजे जाते हैं। विशेषतः परिवार की विवाहित बहने बेटियां, भानजियां, इत्यादि जिन्हें स्थानीय बोली में (**जाई-भानजियां**) और **ध्याहणे** कहा जाता है। शिवरात्रि के उपरान्त प्रत्येक परिवार अपनी ध्याहणियों को तेल में तली हुई रोटियां पहुंचाते हैं जिसे स्थानीय बोली में **नहरलू** या **छड़ोलू** ले जाना कहते हैं। ध्याहणे मायके की इन रोटियों के इन्तजार में रहती हैं। इसमें बहन बेटियों के लिए माता-पिता एवं भाई-भाभियों की स्नेह-प्यार की अनुभूतियां समाई होती है।

सह-प्राध्यापक, राजनीति शास्त्र,
राजकीय महाविद्यालय बासा
जिला- मण्डी हि.प्र.

ग्वाज़ङ ग्राम लाहुल में मण्डी शिवरात्रि

वागंछुक शास्त्री

ग्वाज़ङ भागा नदी के वाम तट पर पवित्र ड्रिल्बुरी की गोदी में स्थित - घंटा पर्वत

हिमाचल प्रदेश के जनजातीय जिला लाहुल स्पिति के लाहुल उपमण्डल में छोटा सा गांव ग्वाज़ङ भागा नदी के वाम तट पर पवित्र ड्रिल्बुरी (घंटा पर्वत ४,४३५ मीटर) की गोदी में स्थित है। इस गांव में केवल आठ ही परिवार निवास करते हैं। जिनमें सात परिवार बौद्ध धर्मालम्बी और एक हिन्दू शिव उपासक सुनार परिवार सौहार्दपूर्ण वातावरण में शताब्दियों से जीवन यापन करते आ रहे हैं। सुनार परिवार गत सैकड़ों वर्षों से विख्यात **मण्डी शिवरात्रि** की परम्परा अनुरूप शिवरात्रि का त्यौहार तीन दिनों तक नियत तिथियों में मनाता आ रहा है। समूचे लाहुल घाटी में केवल मात्र यह परिवार शिवरात्रि को इस रूप में मनाता है। शिवरात्रि को अन्य लाहुली जन भी राक्षसी वृतियों के कुप्रभाव से ग्रामवासियों और उनके माल मवेशियों को बचाने के लिए मनाते तो जरूर हैं, लेकिन इसका स्वरूप पूरी तरह भिन्न होता है। हालांकि इस का आयोजन तीन तक शिवरात्रि की नियत तिथि के अनुसार ही किया जाता है। लाहुल के विभिन्न उप-घाटियों में इस आयोजन को विभिन्न नामों से पुकारते हैं। तोद घाटी में **बामाईलोसर**, पुनन में **च़ोग कुंस**, मनचन में **डेड़ी-तुकंस** और चन्द्रा घाटी में **सलाटी** कहते हैं। तीन दिनों के आयोजन का प्रथम दिन महाशिवरात्रि से एक दिन पूर्व फाल्गुण कृष्ण पक्ष की त्रयोदशी। इस दिन ग्रामों के बच्चे सायंकाल इकट्ठे होकर ग्राम के प्रत्येक घर के प्रवेश द्वार के पास घास फूस तथा झाड़ियों को जलाते, राक्षसों को अश्लील गालियां बकते, ग्रामों से दूर रहने को कहते हैं। साथ ही क्षेत्र में किसी प्रकार का प्रेत दोष न देने की आदेश भी करते हैं। मुख्य द्वारों के ऊपरी भाग पर गोबर के टुकड़े को फंसा कर उसमें कांटे चुभो कर निश्चित हो जाते हैं कि अब शिव के राक्षस गण भीतर प्रवेश नहीं करेंगे। यह प्रक्रिया तीन दिनों तक यथावत चलती रहती है।

महाशिवरात्रि के दिन अर्थात् चौदश तिथि को कुछ ग्रामों में विशेष पूजा का भी आयोजन करते हैं। त्रिलोक नाथ के तुंदे गांव और उदयपुर के मरगुल गांव में देवगूर इस आयोजन का संचालन

करते हैं, जिसे टाळा कहा जाता है।

ग्वाज़ङ गांव की मण्डी शिवरात्रि का विधि-विधान

ग्वाज़ङ गांव के कपूर वंशी सुनार शिवरात्रि उत्सव को विशेष विधि से मनाते हैं। फाल्गुण अमावस के दिन घर की सफाई कर गाय के गोबर से लेप कर और गौमूत्र को छिड़का कर गृह पवित्र करने की विधि संपन्न होती है। मुख्य कक्ष के मध्य दीवार पर 'ब्राजा' (बलिराज) का मण्डल श्वेत मिट्टी के घोल से उकेरा जाता है। कक्ष के फर्श पर शिव जी का मण्डल स्थापित किया जाता है। शिव मण्डल नवगृहों के खानों पर आधारित बनाया जाता है। मण्डल के चारों कोणों पर जौ, चावल, गेहूं और दालों की छोटी-छोटी ढेरियां बनाया जाती हैं। मण्डल को रोटी, पूरी तथा विशेष नैवेद्य से सजाया जाता है। मध्य में घी का दीप जलाया जाता है। छत की खूंटी से लम्बी पुष्पमाला मण्डल के मध्य तक लटकायी जाती है। पुष्पमाला के निचले भाग में एक गोलाकार पुष्प गुच्छा बांधा होता है जो दीपक की लौ पर चक्कर काटता रहता है। आटा के खिलौनानुमा कुछ बकरे भी मण्डल के भीतर सजाए जाते हैं। यह बलि के प्रतीक माने जाते हैं। इसे मुक्ति निस्तरण कहा जाता है। एक छोटी मेज पर सत्तू, मक्खन तथा पेय पदार्थ छङ (लाहुल का विशेष पेय) तथा नमकीन चाय के प्याले सजाये जाते हैं। अब घर के सारे व्यक्ति एक पंक्ति में बैठकर प्राचीन भाषा में शिवस्तुति गाते हैं। इस परिवार ने पीढ़ी दर पीढ़ी मौखिक रूप में आज तक संजोए रखा है। घर के कुछ परिवार उपवास भी रखते हैं। परिवार का एक सदस्य साधू वेष में धोती लंगोट में रहता है। साधू वेषधारी को स्तुति गान के समय भावावेश में आकर शिवजी का खेल भी आता है। यह भविष्यवाणी भी करने लगता है, जिसे **बोल** कहते हैं। प्रायः भविष्यवाणी करते समय आगामी वर्ष किस प्रकार का होने वाला है, अर्थात् आगामी वर्ष में वर्षा, सूखा, फसल, घाट, महामारी, आगजनी आदि के बारे भविष्य कथन करता है। इसको **वर्षोई** कहा जाता हैं। पर्व की समाप्ति पर साधू वेषधारी आटे से बनी बकरी को घर से बाहर दूर स्थान पर पहुंचाता है और चिल्लाता है **थौशक्यो** (ओझल हो जावे)।

ऐतिहासिक तथ्य

ग्वाज़ङ में मण्डी शिवरात्रि पर्व के आयोजन के वारे में इस वहां के सुनार परिवार के वरिष्ठ सदस्य श्री सोनम इस प्रकार बतलाते हैं –

ऐसा कहा जाता है कि मण्डी नगर का एक प्रसिद्ध खत्री वंशी कपूर सुनार कुल्लू आकर कुल्लू का **राजसुनार** नियुक्त हो गया। उसने कुल्लू राजवंश के लिए बहुत से सोने-चांदी और मूल्यवान धातुओं के सुन्दर-सुन्दर आभूषण तैयार किए। वह मन्दिरों के लिए देव मोहरे बनवाने में भी दक्ष था।

16 वीं शताब्दी के अन्त में चम्बा, कुल्लू और लाहुल जनपदों के मध्य राजनैतिक उथल-पुथल पैदा हुई। फलस्वरूप लाहुल का एक बड़ा भू-भाग चम्बा से कट कर कुल्लू राज्य में मिल गया। कुल्लू के राजा ने नवाधिकृत लाहुल पर अपना अधिपत्य को सुदृढ़ करने के लिए लाहुल के जाहलमां गांव में अपनी ईष्ट देवी हिडिम्बा, जिसे राज परिवार की दादी कहते हैं, को प्रतिष्ठापित किया। पटन घाटी के मेलिङ गांव में एक शिवालय का निर्माण कुल्लू स्थापथ्य कला की काष्ठकुणी

शैली में किया। मन्दिर के मध्य लिंगराज स्थापित किया और 108 छोटे-छोटे पाषाण शिवलिंगों की स्थापना बाहरी प्रांगण में की।

वास्तव में यह मन्दिर शिवजी के अंश पुत्र वीरनाथ के लिए निर्माण किया गया था। वीरनाथ के नौ मोहरूओं (मुख प्रतिमाओं) के सहित एक कुल्लू की रथ फेटा रथ शैली भी बनवाया है। जिसे र-वालिङ गांव के पुजारी की देखभाल के लिए सौंपा गया हैं। पतझड़ के अन्तिम दिनों में इस रथ को देवलुगण शांशा गांव ले जाकर मेला रचाते हैं। जिसे **स्रङ-जातर** कहते हैं। वीरनाथ के मोहरूओं को बनवाने के लिए कुल्लू से मण्डी के कपूर वासी सुनार को लाहुल भेजा था। मोहरूओं के तैयार होने पर मण्डी के सुनार को आभूषण आदि बनवाने का प्रचुर कार्य लाहुल घाटी में मिलने के कारण यहां बस जाने का मन बनाकर वह ग्वाजङ गांव में स्थाई रूप से बस गया। परन्तु शिवरात्रि के पर्व को भूल नहीं सका, जिसे आज भी नियत रूप से उनके वंशज मनाते आ रहे हैं। एक अलग रस्मों-रिवाज के परिवेश में शिवरात्रि मनाने की मण्डी की पैतृक परम्परा को इस प्रकार दीर्घ काल से निरन्तर बनाया रखना, अपने मूल के प्रति आस्था का अनुकरणीय उदाहरण है।

राजकीय उच्च पाठशाला
मूरिंग (लाहुल)
जिला - लाहुल स्पिति (हि.प्र.)

अनिला महाजन सरस्वती विद्या मन्दिर वरिष्ठ माध्यमिक आवासीय विद्यालय

मनाली स्थित रांगड़ी

हिमाचल प्रदेश स्कूल शिक्षा बोर्ड धर्मशाला से सम्बद्धता प्राप्त

प्रवेश एवं पंजीकरण सूचना

विद्यालय में विशेष सुविधाएं उपलब्ध

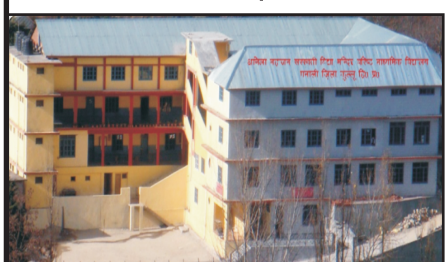

ALEEE/IIT/PMT की तैयारी के लिए ABLES Academy के द्वारा राजस्थान से Satellite के माध्यम से तैयारी करवाई जाती है।

- *Virtual Class Room*
- *Smart Classes*
- *C.C.T.V. Camera*
- *Wi-Fi Campus*

पंजीकरण प्रारम्भ

प्रवेश एवं पंजीकरण सूचना हेतू : -

- ✦ नर्सरी से आठवीं कक्षा के लिए पंजीकरण एवं प्रवेश तिथि 27 जनवरी 2016
- ✦ नवम् से 10+1 कक्षा के लिए पंजीकरण एवं प्रवेश तिथि 1 अप्रैल 10 अप्रैल 2016 तक
- ✦ विद्यालय में सभी कक्षाओं में प्रवेश केवल प्रवेश परीक्षा के आधार पर दिया जाएगा
- ✦ छात्रावास में प्रवेश हेतू पंजीकरण कक्षा चतुर्थ से 10+2 तक

प्रवेश एवं पंजीकरण से सम्बन्धित अधिक जानकरी के लिए सम्पर्क करें : -
प्रधानाचार्य - 094180-07551,
उपप्रधानाचार्य - 98171-42907
कार्यालय - 01902-253777
www.svmmanali.org, www.shiksasmaiti.org,
E-mail : anilasvmmanali@rocketmail.com